163

भारत का विधि आयोग

की

सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1997

विषय पर

एक सौ तिरेसठवीं रिपोर्ट

नवम्बर, 1998

भारत का विधि आयोग

की

सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1997

विषय पर

एक सौ तिरेसठवीं रिपोर्ट

नवम्बर, 1998

J&EA/2000—1

विषय सूची

		पृष्ठ सं.
भाग-एक	प्रस्तावना	1–3
भाग-दो	सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1997 के संबंध में सिफारिशें तथा निष्कर्ष	4–19
उपबन्ध-क	सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1997	20–49
उपबन्ध-ख	प्रश्नावली	50–72

अध्याय 1

प्रस्तावना

1.1 **रिपोर्ट का विषय क्षेत्र** : भारत सरकार (विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय) ने भारत के विधि आयोग से सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 का व्यापक पुनरीक्षण करने का अनुरोध किया था। आयोग ने जनवरी, 1998 में यह कार्य अध्ययन के लिए लिया। आयोग ने यह कार्य दो चरनों में करने का निर्णय किया। पहले चरण में, आयोग ने राज्य सभा में प्रस्तुत किए गए सरकारी विधेयक "सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक 1997 (अनुबन्ध-क) (यहाँ इसके बाद इसे संशोधनकारी विधेयक कहा जाएगा) में दिए गए विभिन्न संशोधनकारी सुझावों पर अपने विचार प्रकट करने का विचार किया है। कार्य के दूसरे चरण में, आयोग का विचार पूरी संहिता का पुनरीक्षण कार्य करने का है क्योंकि सम्पूर्ण संहिता के पुनरीक्षण कार्य में अपेक्षाकृत अधिक समय लगेगा।

1.2 **प्रश्नावलियाँ जारी करना और सम्मेलन का आयोजन :**

संशोधन विधेयक में अन्तर्विष्ट विभिन्न प्रावधानों और प्रस्तावों पर विज्ञ विचार प्राप्त करने की दृष्टि से, आयोग ने एक प्रश्नावलि तैयार की (अनुबन्ध-ख) जिसमें 43 अन्तर्विष्ट है। प्रत्येक प्रश्न में, आयोग ने प्रस्तावित संशोधन का संक्षिप्त अर्थ बताया है साथ ही प्रस्तावित संशोधन पर संभावित प्रतिक्रिया और निर्वचन भी दर्शाए है जहाँ आवश्यक समझा है वहाँ स्पष्ट और विज्ञ प्रतिक्रियाओं की सुविधा के लिए निर्णय विधि का भी उल्लेख किया है। तथापित, यह स्पष्ट कर दिया गया था कि आयोग द्वारा प्रश्नावलि में व्यक्त किए विचार, यदि कोई है, आयोग के अन्तिम विचार नहीं है अपितु उसने बार के सदस्यों, न्यायपीठों तथा विषय से संबंधित अन्य व्यक्तियों से प्रभावी तथा विज्ञ उत्तर प्राप्त करने की दृष्टि से अपने अन्तिम विचार रखे है।

1.3 सभी संबंधित पक्षों को प्रश्नावलि भेजने के अतिरिक्त आयोग ने दिल्ली, इलाहबाद तथा हैदराबाद में तीन सम्मेलन भी आयोजित किए। संबंधित मुख्य न्यायाधीशों से सम्मेलन की व्यवस्था करने का अनुरोध किया गया था और उन्होने सुन्दर ढंग से यह कार्य पूर्ण किया। दिल्ली स्थित सम्मेलन के विधि आयोग की सदस्य न्यायपूर्ति, श्रीमती लीला सेठ ने संयमित किया और इलाहबाद तथा हैदराबाद के सम्मेलन आयोग के अध्यक्ष द्वारा संयमित किए गए। सभी तीनों सम्मेलनों में बार के सदस्यों, अधीनस्थ न्यायपालिका तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से बहुत अच्छा सहयोग प्राप्त हुआ। बहुत से मामलों में उन्होंने लिखित रूप में अपने विचार व्यक्त किए। आयोग ने सम्मेलन में सभी भाग लेने वालों द्वारा व्यक्त किए गए विभिन्न विचारों को संक्षिप्त रूप में रिकार्ड करते हुए सभी सम्मेलनों की कार्यवाहियां का अभिलेख तैयार किया।

1.4 आयोग उन सभी लोगों का आभारी है जिन्होने प्रश्नावलि पर अपने विचार हमें भेजे है और आयोग द्वारा आयोजित किए गए सम्मेलनों में जिन्होंने अपने विचार व्यक्त किए है। विभिन्न प्रश्नों के उत्तरों पर आयोग ने बहुत सावधानीपूर्वक विचार किया है।

1.5 **विषय का महत्व** : आयोग देश में न्याय परिदान प्रणाली की गुणवत्ता के विषय में अपनी विभिन्न रिपोर्टों में बार बार अपनी चिन्ता व्यक्त करता रहा है। इस प्रकार "न्यायिक प्रशासनिक में अवसंरचनात्मक सेवाओं के लिए संशोधन आवंटन—(न्यायपालिका में जनशक्ति नियोजन: एक रूपरेखा से संबंधित रिपोर्ट का सातत्यक) विषय पर आयोग ने अपनी 127वीं रिपोर्ट में निम्नलिखित विचार व्यक्त किया :

> 1.1 जबसे मनुष्यों ने एक दूसरे के साथ पारस्परिक संबंधों और मानव भाग्य-परिवर्तन के बारे में चिन्तन करना प्रारंभ किया, तभी से वे न्याय के अर्थ खोजने के लिए चिन्ताग्रस्त रहे है और प्रचलित धारणा यह रही है कि न्याय केवल न्यायालय के माध्यम से प्राप्त हो सकता है। इसी बात से न्यायालय प्रणाली को विश्वसनीयता और सम्मान प्राप्त होता है। किन्तु किसी अन्य संस्था की भांति इस प्रणाली को यह सेवा प्रदान करके सतत अपना औचित्य प्रतिपादित करना होगा जिसकी उससे आशा की जाती है। जिस क्षण वह असफल हो जाती है या डगमगा जाती है, उसकी विश्वसनीयता और प्रतिष्ठा का ह्रास हो जाता है। कार्यशील लोकतंत्र के लिए, जहाँ राज्य के विरूद्ध भी न्याय प्राप्त किया जाता है, न्यायालय प्रणाली एक पूर्व अध्यपेक्षा है। अत: जब भी न्याय प्रणाली पर असहनीय भार आ जाता है, तब उसे कार्यक्षम आर लोक तथा परिणाम मूलक बनाने की दृष्टि से उसका पूर्णरूपेण पून: परीक्षण और पुनर्गठन करने की आवश्यकता होती है एलन, श्रमिक विधि पुनीरक्षण समिति की रिपोर्ट में उद्धृत (गुजरात सरकार, 1974)
>
> 1.2 मानव अधिकारों को विश्वव्यापी घोषणा में यह उपबन्ध है कि :
>
> "प्रत्येक व्यक्ति को संविधान द्वारा या विधि द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकारो का अधिक्रमण करने वाले कार्यों के लिए सक्षम राष्ट्रीय अधिकरण से प्रभावी उपचार प्राप्त करने का अधिकार है (संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल असेम्बली द्वारा स्वीकृत मानव अधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा, अनुच्छेद 187)"

इस घोषणा के आधारभूत मूल सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए विधि आयोग ने एक अन्य रिपोर्ट में निम्नानुसार विचार व्यक्त किए थे :

"समानता न्यायशास्त्र की समस्त आधुनिक प्रणालियों और न्याय प्रशासन का आधार है। जब कोई व्यक्ति उसके प्रति किए गए अन्याय के लिए प्रतितोष प्राप्त करने या आपराधिक आरोप से स्वयं को प्रतिरक्षा करने के लिए न्यायालय तक पहुंचने में असमर्थ रहता है, न्याय असमान हो जाता है और वे विधियां जो उसके संरक्षण के लिए आशयित है, अर्थहीन हो जाती है और वे उस सीमा तक अपने प्रयोजन के लिए असफल रहती है (भा.वि.आ. न्याय प्रशासन में सुधार पर 14वीं रिपोर्ट पृष्ठ 587)

1.5.1 यथोचित और सगम न्यायालयों की व्यवस्था का अभाव न्याय प्रशासन के प्रति सार्वजनिक असंतोष का प्रमुख कारण है। सन् 1906 में डोन रॉस को पाउण्ड द्वारा अपने प्रसिद्ध भाषण में इसकी अभिव्यक्ति की गई थी।

न्यायालयों में अनियंत्रणीय संचित मामलों, लंबित मामलों की बढती हुई संख्या और मामलों के निपटारे में नीचे से ऊपर तक सभी स्तरों पर होने वाले असामान्य विलम्ब तथा अत्यधिक व्यय के कारण असंतोष उत्पन्न होता है। इसने न केवल विधिज्ञ वर्ग, न्यायाधियाचियों, सामाजिक कर्मणयत्तावादियों, विधि शास्त्रियों, संसद का ध्यान आकृष्ट किया है, वरन न्यायालय प्रबंधकों का भी"। (दी कोर्ट्स, पलकम ऑफ जस्टिस सिस्टम, एच.टी. रूनिब में उद्धृत)

1.5.2 आयोग ने अपनी 127वीं रिपोर्ट में यह भी कहा है कि "सुलभ न्याय" नामक अभिव्यक्ति विभिन्न अर्थ सूचक है। सुलभ न्याय के मार्ग में मंहगाई, भौगोलिक दूरी, प्रतिकूल लागत लाभ अनुपात और भ्रामक न्याय प्राप्त करने में असाधारण विलम्ब जैसे अवरोधक हो सकते है। तद्नुसार राज्य को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि प्रणाली सभी के लिए सुगम है और इसके परिणाम व्यक्तिगत एवं सामाजिक रूप से न्यायोचित होंगे।

1.5.3 सुगम न्याय की अवधारणा में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है। पहले, न्यायिक संरक्षण के अधिकार का अर्थ व्यथित पक्षकार का मुकदमा करने के अधिकार अथवा किसी दावे की प्रतिरक्षा करने से लिया जाता था। इस प्रयोजन से राज्य की ओर से सक्रिय कार्यवाही की आवश्यकता नहीं थी। उनके परिरक्षण से केवल इनता ही आशय था कि राज्य किसी के द्वारा भी उन्हें क्षति नहीं पुहचने देगा। "विधिक निर्धनता" से उन्मुक्ति अर्थात् विधि तथा विधिक संस्थानों का पूर्ण उपयोग करने में बहुत लोगों की अक्षमता राज्य की चिन्ता का विषय नहीं था। [एम.के.पल्लेट्टी, एम्सैस टू जस्टिस 6-7 (बुक 1) भारत के विधि आयोग की ऊपर उद्धत की गयी। 127वीं रिपोर्ट का पैरा 2.2 और 2.3]

1.5.4 प्रक्रिया, पक्षकारों के वास्तविक अधिकारों की चेरी है [सुखबीर सिंह बनाम बिजपाल सिंह (1997) 2 सु.को. 200] अधिष्ठायी विधियां नागरिकों के अधिकार और दायित्व निश्चित करती है परन्तु प्रक्रियात्मक विधियों, जो यदि कम नहीं है, समानरूप से महत्वपूर्ण है, इन अधिकारों और दायित्वों के प्रवर्तन के लिए प्रक्रिया विहित करती है। अधिष्ठायी विधियों की प्रभावकारिता, अधिकांशत: प्रक्रिया विधियों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। जब तक प्रक्रिया सरल, त्वरित तथा कम खर्च वाली नहीं होगी, तब तक अधिष्ठायी विधि चाहे जितनी भी अच्छी हो, अपने उद्देश्य और प्रयोजन में अवश्य ही असफल रहेगी।

1.5.5 इसके अतिरिक्त, जैसाकि आयोग ने "ग्राम न्यायालय" विषय पर अपनी 114वीं रिपोर्ट के अध्याय पाच के पैरा 5.3 में विचार व्यक्त किया है कि :—

"5.3 समस्या को केवल न्यायालयीय प्रबंध की दृष्टि से देखना मुखता होगी। दूसरे राज्यों में न्यायालयों में निरन्तर बढ़ने वाले कार्य या भीड को सुप्रबन्ध देने की समस्या का समाधान ढूंढना ही प्रश्न नहीं है। इस प्रकार के प्रयास को भारत के संविधान के अन्तर्गत घोषित आकांक्षाओं के अनुकूल होना चाहिए। भारत के संविधान का अनुच्छेद 39क निदेशित करता है कि राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक व्यवस्था इस प्रकार काम करे कि न्याय समान अवसर के आधार पर सुलभ हो और वह विशिष्टतया सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्रणाली प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाय, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या अन्य रीति से नि:शुल्क सहायता की व्यवस्था करेगा। यह संविधानिक आज्ञा है आर्थिक या अन्य निर्योग्यताओं के आधार पर न्याय से वंचित होना ही संक्षेप में समस्या है। संविधान हमें आशा देता है कि न्याय तक पहुँचने में बाधाओं को क्रमबद्ध रूप से समाप्त करें। सरकार के सभी अधिकरणों पर यह मूलभूत उत्तरदायित्व है कि वे ऐसा प्रयास करें जिनसे न्याय सुलभ हो"।

1.5.6 संविधान का अनुच्छेद 39क के अनुसार राज्यों का यह कर्तव्य है कि वे विधिक न्याय प्रणाली की व्यवस्था इस प्रकार से करें जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि इसकी कार्यपद्धति से समान अवसर के आधार पर न्याय को प्रोत्साहन मिलता है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उपयुक्त विधान बनाना होगा और यह सुनिश्चित करने के लिए योजना बनानी होगी कि कोई भी नागरिक आर्थिक या किसी अन्य प्रकार की अक्षमता के कारण न्याय प्राप्त करने के अवसरों से वंचित न रहें। अन्य प्रकार का अक्षमता में, न्याय चाहने वाले व्यक्ति के निवास स्थान से दूरस्थ स्थानों पर न्यायालयों का स्थित होना न्याय चाहने वाले व्यक्ति को हतोत्साहित करता है (देखें भारत के विधि आयोग के 127वे प्रतिवेदन का पैरा 2.4)

अत: संहिता में सुधार करने के प्रयास करते समय उपर्युक्त संवैधानिक प्रयोजनों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

1.5.7 मामलों के निपटान में विलम्ब से न्याय को खतरा है। समय व्यतीत होने के साथ साथ सत्य अस्पष्ट हो जाता है, साक्षियों की स्मरण शक्ति दुर्बल होती है और साक्ष्य को प्रस्तुत करना कठिन हो जाता है इसके परिणामस्वरूप न्यायिक प्रक्रिया में जन विश्वास को क्षति पहुँचती है जो स्वयं में विधि सम्मत शासन के लिए और इसके परिणामस्वरूप लोकतन्त्र के लिए खतरा है। बताया जाता है कि विलम्ब से मुकदमे में खर्च की राशि बढ़ जाती है जिसके कारण पक्षकार सारपूर्ण दावों को या तो छोड़ देते हैं अथवा न्यायालय के बाहर अनुचित समझौता कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त एक संयमित समाज, जो अपने सदस्यों से दुष्कृत्यों स्वमेव समाधान खोजने की अपेक्षा विधिक प्रक्रिया पर विश्वास करने का परामर्श देता है, की नैतिक भावना के आहत होने को अभिव्यक्ति मिलना भी अनिवार्य है। अराजकता से बचने के लिए व्यथित पक्षकारों में न्यायोचित्य की भावना रहनी चाहिए और क्रमिक व्यवस्था द्वारा न्यायलय ही इस कार्य को पूरा करता है। किसी राष्ट्र में शान्ति व्यवस्था तथा निरन्तर प्रगति बनाये रखने के लिए सर्वाधिक शक्तिशाली शक्ति कानून का पालन करना बताया गया है (एस. सैट्टीट "शीर्ष न्याया की सीमाएं", शीघ्र न्याय, 1 पृष्ठ 15) (भारत के विधि आयोग की 127वीं रिपोर्ट का पैरा 2.15 और 1.12 उपर्युक्त)

1.6 विगत में किये गये प्रयास

आयोग ने मामलों के शीघ्र निपटाने तथा देश के विभिन्न न्यायालयों में बहुत बड़ी संख्या में लम्बित पड़े मामलों के समाधान की दृष्टि से अपनी पहली रिपोर्ट में अनेकों सिफारिशें की है। संबंधित रिपोर्ट इस प्रकार है :—

(i) "न्यायिक प्रशासन का सुधार" विषय पर 14वीं रिपोर्ट

(ii) "सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908" विषय पर 27वीं रिपोर्ट

(iii) "सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908" विषय पर 54वीं रिपोर्ट

(iv) "सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34 और 35 के अधीन डिक्री के पश्चात ब्याज की दर तथा लागतों पर ब्याज" विषय पर 55वीं रिपोर्ट

(v) विधिक प्रावधानों के अधीन वाद का नोटिस विषय पर 56वीं रिपोर्ट

(vi) उच्च न्यायिक संरचना और अधिकारिता विषय पर 58वीं रिपोर्ट

(vii) "विचारण न्यायालयों में विलम्ब और बकाया मुकदमों" पर 77वीं रिपोर्ट

(viii) "उच्च न्यायालय और दूसरे अपील न्यायालयों में विलम्ब और बकाया मुकदमें" विषय पर 79वीं रिपोर्ट

(ix) "उच्च न्यायालयों में मौखिक और लिखित तर्क" विषय पर 99वीं रिपोर्ट

(x) "ग्राम न्यायालय" विषय पर 114वीं रिपोर्ट

(xi) "उच्च न्यायालय में बकाया मुकदमें—एक नई दृष्टि" पर 124वीं रिपोर्ट

(xii) "उच्चतम न्यायालय—एक नई दृष्टि" पर 125वीं रिपोर्ट

(xiii) "मुकदमों में खर्चे" पर 128वीं रिपोर्ट

(xiv) "शहरी क्षेत्र के मुकदमा—न्याय निर्णयन के विकल्प के रूप में मध्यस्थता" विषय पर 129वीं रिपोर्ट

(xv) "केन्द्रीय विधियों पर उच्च न्यायालय के निर्णयों में विरोध" विषय पर 136वीं रिपोर्ट

(xvi) "विधायिका के हितकारी आशय और निर्णित ऋणियों की तलाशी गयी प्रासुविधा प्रति अन्याय के अवसरों को जो अकृत्य करती है, की विषमता को दूर करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 21, नियम 92 (2) का संशोधन करने की अति आवश्यकता" विषय पर 139वीं रिपोर्ट

(xvii) "अन्याय को परोबंधित करने के विचार से समनों को पंजिकृत डाक से भेजने से संबंधित, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 5, नियम 19-क का संशोधन करने की आवश्यकता" विषय पर 140वीं रिपोर्ट

(xviii) "सिविल प्रक्रिया संहिता, 1906 के न्यायिक निर्णयों में विरोध से संबंधित" विषय पर 144वीं रिपोर्ट

(xix) "सिविल प्रक्रिया संहिता (1908 का अधिनियम सं. 5) के संशोधनों के बारे में कुछ सुझाव" पर 150वीं रिपोर्ट

अध्याय-2

सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1997 के संबंध में सिफारिशें तथा निष्कर्ष

2.1 भारत में वादों में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया और सिविल कार्यवाही संबंधी विधि (जम्मू और कश्मीर, नागालैण्ड तथा असम के जनजातिय क्षेत्र तथा कतिपय अन्य क्षेत्रों को छोड़कर) सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 में अन्तर्निहित है (यहां इसके पश्चात संहिता के रूप में निर्देशित)। संहिता में केंद्रीय तथा राज्य विधानमंडलों के विभिन्न अधिनियमों द्वारा समय समय पर संशोधन किए गए है। संहिता मुख्यतया दो भागों में अर्थात् धाराएं तथा आदेश, विभाजित है जहां मुख्य सिद्धान्त धाराओं में अन्तर्निहित हैं, धाराओं के अधीन आने वाले मामलों पर कार्यवाही की विस्तृत प्रक्रिया आदेशों में दी गई है। संहिता की धारा 122 के अधीन, उच्च न्यायालयों की आदेशों में निर्धारित की गई प्रक्रिया के नियमों द्वारा संशोधित करने की शक्ति प्राप्त है। इन शक्तियों का उपयोग करते हुए, विभिन्न उच्च न्यायालयों ने विभिन्न संशोधन किए हैं।

2.2 न्यायमूर्ति मालिमथ समिति की सिफारिशों, भारत के विधि आयोग की 129वीं रिपोर्ट तथा अधीनस्थ विधान संबंधी समिति (ग्यारहवी लोकसभा) की सिफारिशों और नई दिल्ली में 30 जून और 1 जुलाई, 1997 को आयोजित हुए विधि मंत्रियों के सम्मेलन में पारित संकल्प को कार्यरूप में परिणित करने की दृष्टि से सरकार ने सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 में संशोधन करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1997 पुर: स्थापित किया। विधेयक (अनुबंधक) का प्रयोजन, अन्य बातों के साथ-साथ, सिविल वादों तथा कार्यवाहियों का शीर्ष निपटारा कराने से है ताकि न्याय में विलम्ब न हो (देखें संशोधन विधेयक में दिए गए उद्देश्य और कारणें के विवरण का पैरा 2) विधेयक में परिसीमन अधिनियम, 1963 न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 के कतिपय उपबंधों का संशोधन करने का भी प्रावधान है।

2.3 संशोधन विधेयक में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में निम्नलिखित उहत्वपूर्ण परिवर्तन करने का प्रस्ताव है (विधेयक में दिए गए उद्देश्यों ओर कारणों के कथन में दर्शाए गए) :—

(क) फाइल किया जाने वाला वादपत्र, दो प्रतियों में होगा और उसके साथ ऐसे सभी दस्तावेज होंगे, जिन पर वादी अपने दावे के समर्थन में निर्भर करता है। यह ऐसे शपथपत्र द्वारा भी समर्थित होगा जिसमें वादी के दावे की ओर ऐसे दस्तावेजों की, जिन पर वह निर्भर करता है, असलियत के बारे में कथन हो;

(ख) दो प्रतियों में लिखित कथन के साथ सभी दस्तावेज होंगे और समन तामील किए जाने की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर फाइल किया जाएगा। लिखित कथन भी शपथ पत्र द्वारा समर्थित होगा;

(ग) समन की तामील में विलंब को कम करने के लिए यह प्रस्ताव है कि वादी न्यायालय से समन लेगा और उसे उस पक्षकार को, समन की प्राप्ति के दो दिन के भीतर, डाक द्वारा, फैक्स, ई-मेल, त्वरित डाक, कूरियर सेवा द्वारा या ऐसे अन्य साधन द्वारा पक्षकार को भेजेगा जो न्यायालयों द्वारा निर्दिष्ट किए जाएं;

(घ) भारत के विधि आयोग की एक सौ उनतीसवीं रिपोर्ट को कार्यान्वित करने की दृष्टि से और सुलह की स्कीम को प्रभावी करने के लिए यह प्रस्ताव किया जाता है कि न्यायालय के लिए यह बाध्यकारी किया जाए कि वह विवादों को विवाद्यक विरचित करने के पश्चात् समझौते के लिए माध्यस्थम, सुलह, बिचौलिया, न्यायिक परिनिर्धारण के माध्यम से या लोक अदालत के माध्यम से निपटान के लिए निर्देशित करे। यहाँ केवल पक्षकार द्वारा अपने विवादों को आनुकल्पिक विवाद संकल्प तरीकों में से किसी के द्वारा तय कराने में असफल रहने के पश्चात् ही उक्त वाद में उसी न्यायालय में आगे कार्यवाही की जाएगी जिसमें वह फाइल किया गया था;

(ङ) चूंकि न्यायालयों द्वारा मौखिक साक्ष्य अभिलिखित करने में अधिकतम समय नष्ट होता है इसकी वजह से मामलों के निपटारे में विलम्ब होता है इसलिए यह प्रस्ताव किया जाता है कि प्रत्येक साक्षी की शपथपत्र के रूप में मुख्य परीक्षा फाइल करने के लिए उपबंध करके ऐसे विलम्ब को कम किया जाए। साक्षियों की प्रतिपरीक्षा और पुन: परीक्षा के लिए यह प्रस्ताव किया जाता है कि वह न्यायालय द्वारा नियुक्त किए जाने वाले कमिश्नर द्वारा अभिलिखित की जाएगी और कमिश्नर द्वारा अभिलिखित किया गया साक्ष्य वाद के अभिलेख का भाग होगा;

(च) अनावश्यक स्थगनों को कम करने के लिए कदम उठाने के संबंध में अधीनस्थ विधान संबंधी समिति की (ग्यारहवीं लोक सभा) सिफारिशों को कार्यान्वित करने की दृष्टि से यह प्रस्ताव किया जाता है कि न्यायधीशों के लिए मामले के स्थगन के लिए स्थगन की मांग करने वाले पक्षकारों के विरुद्ध वास्तविक या उच्चतर खर्चों न कि मीमांसात्मक खर्चे के लिए कारणों को अभिलिखित करना बाध्यकर किया जाए। विरोधी पक्षकार के पक्ष में मामले की सुनवाई के दौरान स्थगनों की संख्या केवल तीन तक सीमित करने का प्रस्ताव है;

(छ) चूंकि वह पक्षकार जिसके पक्ष में व्यादेश प्रदान किया गया है; प्राधिकृत तुच्छ और अयुक्तियुक्त आधारों पर विलम्ब करता है इसीलिए यह प्रस्ताव किया जाता है कि वह पक्षकार, जो व्यादेश के लिए आवेदन करता है, प्रतिभूति देगा जिससे कि वह पक्षकार मामले के विचारण के दौरान विलम्बकारी युक्तियों को अपना न सकें;

(ज) संपत्ति के विवादों विशेषकर किसी अन्य की भूमि पर अप्राधिकृत निर्माण से संबंधित मामलों में यह पाया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के विद्यमान उपबंधों के अधीन व्यादेश के लिए कोई आवेदन केवल तभी किया जा सकता है जब सक्षम अधिकारिता रखने वाले न्यायालय में पहले वाद फाइल कर दिया गया हो। इस कठिनाई को दूर करने की दृष्टि से यह प्रस्ताव किया जाता है कि वह व्यक्ति सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय में संपत्ति की वास्तविक स्थिति को सुनिश्चित करने के लिए आयुक्त नियुक्ति के लिए आवेदन करे जिससे नियमित वाद फाइल करने के समय विवादग्रस्त संपत्ति का वास्तविक स्थिति के संबंध में रिपोर्ट कमिश्नर को उपलब्ध हो;

(झ) न्यायमूर्ति मालिमथ समिति की सिफारिशों को कार्यान्वित करने की दृष्टि से यह प्रस्ताव किया जाता है कि एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध यहां तक कि संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के अधीन याचिकाओं में भी कोई और अपील नहीं होगी; और

(ञ) विलम्ब को कम करने की दृष्टि से यह प्रस्ताव किया जाता है कि न्यायालय निर्णय सुनाने की तारीख को निर्णय सुनाए जाने के साथ ही पक्षकारों को निर्णय की अधिप्रमाणित प्रतियां उपलब्ध कराएगा। अपील उसी न्यायालय में फाइल की जाएगी जो डिक्री पारित करता है और प्रथम अवसर के न्यायालय में पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सूचना की तामील नहीं की जाएगी।

3. विधेयक उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए है।

2.4 संशोधन विधेयक के अवलोकन से पता चलता है कि 36 खंड है जिनमें विभिन्न संशोधक प्रतिस्थापन, लोप तथा अन्त: स्थापन अन्तर्विष्टि हैं। संशोधन विधेयक में विधेयक के खंडों पर टिप्पण भी दिए गए हैं जो वर्तमान उपबंधों का संशोधन करने अथवा संहिता में नया उपबंध अन्त: स्थापित करने के लिए आवश्यक भूमिका प्रदान करते हैं। प्रत्यावोजित विधान के बारे में ज्ञापन उन प्रावधानों को दर्शाता है जिनके अधीन सरकार अथवा उच्च न्यायालय नियम बना सकते हैं। संशोधन विशेयक में जिन प्रावधानों में संशोधन करने का प्रस्ताव है वर्तमान प्रावधानों से उनकी तुलना करने सुविधा के लिए उन प्रावधानों के उद्धरण विधेयक में पृष्ट 23 से 38 तक पर दिये गए है।

2.5 आयोग का विचार संशोधनकारी विधेयक निमनलिखित खण्डों पर विचार करने तथा सिशारिश करने का है। जो खंड संहिता में आमूल परिवर्तन करने वाले प्रतीत होते हैं वे हैं—खंड 2, 7, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 23, 24, 26, 27, 28, 30, 31 और 32 विधेयक के अन्य खंडों के बारे में आयोग सुझाए गए संशोधनों से सहमत है।

2.6 संशोधन विधेयक के खंड-2 में वादपत्र में कथित तत्यों के समर्थन में शपथपत्र प्रस्तुत करने के लिए वादी को आबद्धकर बनाने हेतु धारा 26 में उपधारा (2) अन्त: स्थापित करने का प्रस्ताव :

आदेश के लिए भी ऐसे ही प्रावधान का प्रस्ताव है। आदेश 6 के नियम 15 में उपनियम (4) अन्त: स्थापित करने का प्रस्ताव है जिसमें यह व्यवस्था है कि "अभिवचनों का सत्यापन करने वाला व्यक्ति अपने अभिवचनों के समर्थन में शपथपत्र भी प्रस्तुत करेगा"। यह स्पष्ट है कि लिखित कथन भी इसके अन्तर्गत आ जाएंगे।

2.6.1 न्यायपीठ तथा बार के सदस्यों की प्रतिक्रिया समान रूप से इन प्रस्तावों के विरुद्ध है। उनके द्वारा व्यक्त किया सामान्य विचार यह है कि ऐसे प्रस्ताव से वादों के निपटान में और अधिक विलम्ब होगा। यह बताया गया है कि अभिवचनों में असत्य और दुर्भावपूर्ण प्रकथन के विषय में कार्यवाही करने के लिए वर्तमान विधि व्यवस्था में अनेकों प्रावधान हैं और इस अतिरिक्त अपेक्षा से कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। उदाहरण के रूप मेंविधि सम्मेलनों में भाग लेने वालों ने याचिकाओं तथा प्रतियाचिकाओं में तथा याचिकाओं की कार्यवाहियों में प्रस्तुत किए गए अन्य शपथ पत्रों में, जो असत्य कथन करने की प्रवृति पर किसी भी रूप में किसी प्रकार का भी नियंत्रण प्रमाणित नहीं हुए थे, कथित तत्यों के समर्थन में इसी प्रकार की आवश्यकता का निर्देश किया था। यह विचार भी व्यक्त किया गया था कि अभिवचनों के समर्थन में शपथपत्र प्रस्तुत करने से अभिवचन एक प्रकार से साक्ष्य का रूप ले लेते हैं। इस स्थिति में कोई पक्षकार अपने अभिवचनों में कथित तथ्यों के बारे में दूसरे पक्षकार से अपनी प्रतिपरीक्षा करने के लिए कह सकता है।

2.6.2 तथापि, विधि आयोग का मत है कि प्रस्तावित संशोधन हितकारी है और कम से कम कुछ सीमा तक अभिवचनों में असत्य प्रकथनों की प्रवृत्ति पर अंकुश लगा सकता है। इस संबंध में आयोग जार्ज बर्नार्डशे के विचारों का स्मरण कराना चाहेगा ————"विधिक प्रक्रिया का सिद्धान्त यह है, कि यदि आप दो असत्य वक्ताओं से एक दूसरे का असत्य प्रकट करने के लिए कहेंगे तो सत्य स्पष्ट हो जाएगा"। संभवतया यह व्यंग्यार्थक है जो न्यायालयों में अभिवचनों के स्वरूप और अभिवचनों में असत्य कथन करने की प्रवृति पर बल देने के संबंध में उनकी अपनी शैली

में है। इस प्रवृति को निश्चित रूप से नियंत्रित करना होगा। यदि दो से पांच प्रतिशत मामलों में भी अभिवचनों में असत्य कथन करने वाले पक्षों के विरुद्ध उपयुक्त कार्यवाही की जाए तो इससे इस प्रवृति को रोकने में बहुत सहायता मिलेगी। प्रस्तावित उपायों को परीक्षण के तौर पर अपनाया जा सकता है और यदि यह पाया जाता है कि इनसे और विलम्ब होता है, जैसी कि सम्मेलनों में भाग लेने वाले बहुत से सदस्यों ने आशंका व्यक्त की है, तो इसकी पुनरीक्षा की जा सकती है। तथापि, यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि पक्षकार केवल अभिवचनों में कथित तथ्यों की सत्यता की शपथ लेते है न कि उसमें कथित विधि के किसी प्रश्न अथवा प्रतिवादनाओं की, यदि कोई हो। पक्षकार अपने शपथ-पत्र में यह बताने के लिए भी स्वतंत्र होना चाहिए कि वह अपनी प्राप्त जानकारी के आधार पर किन तथ्यों को सत्य मसझता हैं। निम्नलिखित मामलों में उच्चतम न्यायालय के विचारों का निर्देश करना अनुपयुक्त नहीं होगा :—

धनंजय शर्मा बनाम हरियाणा राज्य (1995) 3 सु. को 757, पृष्ठ 38 मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया :

''.....न्यायिक कार्यवाही में असत्य शपथपत्रों से न केवल न्यायिक कार्यवाहियों के सम्यक अनुक्रम में बाधा पड़ती है अपितु न्याय प्रशासन में भी, अड़चन गतिरोध और हस्तक्षेप होता है। विधि की सम्यक् प्रक्रिया को क्षीण नहीं होने दिया जा सकता और ना ही मुकदमें के पक्षकारों अथवा साक्षी के रूप में उपस्थित होने पर भी उनके इस प्रकार के कृत्यों और आचरण विधि की गरिमा को उपहास्पर बनने दिया जा सकता। जो कोई व्यक्ति असत्य साक्ष दाखिल करके न्याय की निर्मल धारा को निर्बाध गति में बाधा डालने का प्रयास करता है वह न्यायालय की दंडिक अवमानना करता है और अपने को इस स्थिति में ले आता है कि उसके विरुद्ध अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार कार्यवाही की जा सकती है। न्यायालय में असत्य शपथपत्र दाखिल करने और शपथ लेकर असत्य कथन करने से विधि सम्मत शासन को आघात पहुंचता है और कोई भी न्यायलय इस प्रकार के आचरण की उपेक्षा नहीं कर सकता जिससे न्यायिक संस्थानों में जनविश्वास को झटका लगता है क्योंकि नियमित जीवन की संरचना को ही दॉव पर लगा दिया जाता है। यदि न्यायालयों में किसी के द्वारा असत्य शपथपत्र प्रस्तुत करेके, असत्य कथन करके असत्य साक्ष्य बनाकर न्याय की आधार शिला को विषैला होने दिया गया तो यह एक घोर सार्वजनिक विपत्ति होगी। न्याय की धारा को निर्मल और शुद्ध रखना है और इस शुद्धता को दूषित करने वाले व्यक्ति को विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की जानी चाहिए ताकि एक ऐसा स्पष्ट सन्देश पहुंच सके कि किसी को भी न्यायालय की गरिमा को कम नही करने दिया जाएगा और ना ही न्यायिक कार्यवाहयों में अथवा न्यायिक प्रशासन में हस्तक्षेप करने दिया जाएगा.....''

मोहन सिंह बनाम स्व. अमर सिंह 1998 (5)स्केल 115 मामले में उच्चतम न्यायालय निम्नलिखित अभिनिर्धारित करते हुए न्यायालयों में असत्य शपथ प्रस्तुत करने के परिणामों पर बल दिया :—

''36 न्यायिक कार्यवाहियों के रिकार्ड में गड़बड़ करने और न्यायालय में असत्य शपथपत्र प्रस्तुत करने से न्याय के सम्यक् अनुक्रम में बाधा पड़ती है। इससे न्याय की निर्मल धारा की निर्बाध गति अवरूद्ध होती है और न्याय सम्मत शासन को आघात पहुंचता है। न्याय की धारा को स्वच्छ और शुद्ध बनाए रखना है और किसी को भी इस शुद्धता को दूषित नहीं करने दिया जा सकता। क्योंकि हम प्रथमदृष्टया इस तथ्य से सन्तुष्ट है कि अभिधारी ने असत्य शपथपत्र प्रस्तुत किए हैं और न्यायिक अभिलेख में गड़बड़ी की है शपथ पर मिथ्या साक्ष्या देने की बुराई को दूर करने की दृष्टि से हम इस न्यायालय के रजिस्ट्रार को उपयुक्त न्यायालय में मामला दायर करने और दंडिक विधि प्रक्रिया आरम्भ करने के निदेश देना उपयुक्त समझते हैं''

इन व्यवस्थाओं को देखते हुए विधि आयोग सुझाए गए संशोधन को उपयुक्त समझता है।

2.7 संशोधन विधेयक का खंड 7, विवादों के समाधान के लिए वैकल्पिक उपायों, जैसे सुलह, बीच-बचाव, माध्यस्थम, न्यायिक समझौते अथवा लोकअदालत के माध्यम समझौते, की संभावन का पता लगाने के लिए न्यायालयों को योग्य बनाने हेतु धारा 89 अन्त: स्थापित करने का प्रस्ताव :

प्रस्ताव के विषय में चर्चा करते हुए यह उल्लेख किया जा सकता है कि इस विषय पर काफी चर्चा हुई। न्यायपीठ तथा बार दोनों के सदस्यों ने लगभग एक समान मत अभिव्यक्त किया कि धारा 89 में अवधारित कार्य न्यायालयों द्वारा किए जाने के लिए नहीं कहा जाना चाहिए यह बताया गया कि ऐसा करने से निष्पक्ष मध्यस्थ के रूप में न्यायालय की निष्पक्षता पर टिप्पणियां की जायेगी और संदेह व्यक्त किया जायेगा। पक्षकारों से टिप्पणियां प्राप्त होने के पश्चात समझौते की शर्तों का निबन्धन बनाते समय अथवा सम्भावित समझौते की शर्तें का पुनर्निबन्ध न बनाते समय यह हो सकता है कि न्यायालय को विवाद के किसी विशिष्ट पहलू पर अपना मत अभिव्यक्त करना पडे जो हो सकता है किसी पक्षकार को मान्य न हो। कुछ प्रक्रियात्मक कठिनाईया (उदाहरण के लिए वर्तमान माध्यस्थम अधिनियम में लम्बित बाद में मध्यस्थता के लिए निर्देश करने का उपबन्ध न होना) भी बतायी गयी। तदनुसार सम्मेलन में भाग लेने वालो ने विभिन्न विकल्पों के सुझाव दिये। एक यह विकल्प सुझाया जाता है कि प्रस्तावित धारा 89 अन्तस्थापित करने के बजाये सभी बादों के लिए वर्तमान आदेश 32-क में उपयुक्त संशोधन किया जाये। एक अन्य सुझाव जिसे पर्याप्त समर्थन प्राप्त हुआ प्रतीत होता है यह था कि मुद्दों का समाधान हो जाने के पश्चात प्रत्येक वाद सुलहकर्ताओं की एक समिति अथवा बोर्ड, जो निष्ठावान तथा दक्ष वरिष्ठ अधिवक्ताओं तथा सेवानिवृत न्यायिक अधिकारियों से गठित होगी, को आवश्यक रूप से भेजा जाना चाहिए। इस प्रकार की समिति अथवा

बोर्ड विभिन्न पक्षों को सुनने के पश्चात् यह निर्णय करेगी कि वाद समाधान धारा 89 की उपधारा (1) में उल्लिखित वाद समाधान की किसी वैकल्पिक पद्धति के लिए निर्देश किया जाये अथवा नहीं। यह भी स्पष्ट किया गया कि सामान्यतया मुद्दों का विनिश्चय करने तथा सुनवाई आरम्भ होने के बीच पर्याप्त समय रहता है और इसलिए समिति अथवा बोर्ड को आज्ञापक निर्देश करने से बाद की सुनवाई अथवा निर्णय में कोई विलम्ब नहीं होगा तथापि कुछ सदस्यों ने यह आशंका व्यक्त की कि जहां यह सुझाव कार्यान्वित करना कुछ शहरों और बड़े नगरों के लिए तो सम्भव है क्योंकि वहां काफी बडी संख्या में निष्ठावान वरिष्ठ अधिवक्ता और सेवानिवृत्त न्यायिक अधिकारी उपलब्ध होते है; छोटे नगरों में इसे कार्यान्वित करने में कठिनाईयां होगी क्योंकि वहां केवल एक न्यायालय होता है और पर्याप्त संख्या में निष्ठावान वरिष्ठ अधिवक्ता और सेवानिवृत्त न्यायिक अधिकारी उपलब्ध नहीं होते।

2.7.1 विधि आयोग का मत है कि प्रस्तावित धारा 89 में निम्नलिखित प्रावधान करते हुए उपयुक्त संशोधन किया जाये :

(क) प्रत्येक वाद में विवादित विषयों का समझौता हो जाने के पश्चात् (अभिवचनों के साथ दस्तावेज प्रस्तुत करने से संबंधित प्रस्तावित उपबन्धों द्वारा अपेक्षित दोनों पक्षकारों द्वारा मूल दस्तावेज प्रस्तुत कर देने पर) वाद को, यह पता लगाने के लिए कि क्या समझौते के ऐसे तत्व विद्यमान है जो दोनों पक्षों को स्वीकार्य हों और यदि बोर्ड को यह प्रतीत होता हो कि ऐसे तत्व विद्यमान हैं, सुलहकर्ता बोर्ड को निर्देश दिया जाएगा और वे वाद को माध्यस्थम, न्यायिक समझौते अथवा लोक अदालत के माध्यम से समझौते के लिए निर्देश करेंगे। बोर्ड द्वारा बीच बचाव करने की पद्धति को भी यदि व्यवहार्य पाया जाए, अपनाया जा सकता है। इस प्रकार के निर्देश यदि बोर्ड इन्हें व्यवहार्य वांच्छनीय समझती है, सम्भावित समझौते की शर्तों के पुर्ननिबंधन के पश्चात् अथवा पुर्नविबन्ध के बिना ही, यथास्थिति, किये जा सकेगें।

(ख) मूल सिविल न्यायालय के पीठासीन अधिकारी प्रत्येक शहर और नगर में, अपने वरिष्ठ साथियों से परामर्श करके निष्ठावान और दक्ष सेवानिवृत न्यायिक अधिकारी और वरिष्ठ अधिवक्ताओं का एक सुलहकर्ता बोर्ड गठित करेंगे।

(ग) सुलहकर्ता बोर्ड को अपना कार्य पूरा करने के लिए, जैसे वाद को माध्यस्थम/न्यायिक समझौते अथवा लोक अदालत के माध्यम से समझौते के लिए अथवा सुलह के माध्यम से समझौता कराके, यदि ऐसा करना वांच्छनीय समझते हैं अथवा न्यायालय को यह रिपोर्ट करके कि वे समझौते के कोई ऐसे तत्व नहीं पा सके जो पक्षकारों को स्वीकार्य हो इसलिए माध्यस्थम/सुलह/न्यायिक समझौते अथवा लोक अदालत के माध्यम से समझौते के लिए वाद का निर्देश करना न तो आवश्यक है और न ही वांछनीय, एक समय सीमा निर्धारित की जानी चाहिए। यह अवधि प्रत्येक न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट किये जाने के अनुरूप, चार माह से एक वर्ष तक हो सकती है।

(घ) प्रस्तावित धारा 89 की उप धारा (1) मे उल्लिखित बीच बचाव की वैकल्पिक पद्धति निकाल दी जानी चाहिए। न्यायालय द्वारा बीच बचाव की कार्यवाही वाद में चल रही कार्यवाही के किसी स्तर पर भी की जा सकती है और इसका उल्लेख विधि के रूप में विवादित विषय के किसी भी स्तर पर अथवा बाद में किसी स्तर पर नहीं किया जाना चाहिए। न्यायालय के लिए यह मार्ग सदैव खुला है अत: इसे परिभाषित करने अथवा संहिताबद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है। तदनुसार धारा 89 की उपधारा (2) का खण्ड (घ) निकाल दिया जाना चाहिए।

उपर्युक्त सिफारिशों की दृष्टि में धारा 89 का पुन: प्ररूपण किया जाना चाहिए।

2.8 संशोधन विधेयक का खण्ड 10-वर्तमान धारा 100-क प्रतिस्थापित करने का प्रस्ताव :—

इस संशोधन के द्वारा संहिता की धारा 96 के अधीन की गई अपील में एकल न्यायाधीश के निर्णय तथा डिक्री के विरुद्ध लेटर्स पेटेन्ट अपील तथा संविधान के अनुच्छेद 226 अथवा अनुच्छेद 227 के अधीन आवेदन में एकल न्यायधीश के निर्णय तथा आदेश के विरुद्ध दायर की गई लेटर्स पेटेन्ट अपील को समाप्त करने के विचार किया गया है।

2.8.1 जहां तक अनुच्छेद 226 के अधीन आवेदन पर एकल न्यायाधीश के निर्णय तथा आदेश के विरुद्ध लेटर्स पेटेन्ट अधीन को समाप्त करने के प्रस्ताव का संबंध है, न्यायपीठ तथा बार दोनों के ही सदस्यों ने इस प्रस्ताव का एक मत से कडा विरोध किया। ऐसे प्रस्ताव से केवल उच्चतम न्यायालय का कार्यभार बहुत अधिक बढ़ जायेगा क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 130 के अधीन उच्चतम न्यायालय में ही एक मात्र उपचार शेष रह जायेगा।

2.8.2 जहां तक अनुच्छेद 227 का संबंध है इस के बारे में भी स्थिति यही है, तथापि इस संबंध में विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा अपनायी जाने वाली प्रक्रिया एक समान नहीं है। उदाहरण के लिए आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने और सम्भवतया दक्षिण राज्यों के कुछ अन्य उच्च न्यायालयों

ने भी, संविधान अनुच्छेद 227 के अधीन कोई आवेदन सिविल पुनरीक्षण याचिका माना जाता है और पंजीकृत किया जाता है। ऐसी स्थिति में ऐसे आवेदन/याचिका पर दिये गये आदेश के विरुद्ध लेटर्स पेटेन्ट अपील का कोई प्रश्न ही नहीं उठता तथापि कुछ अन्य उच्च न्यायालयों ने अनुच्छेद 227 के अधीन आवेदन को अनुच्छेद 226 के अधीन दिये गये आवेदन के समान ही समझा जाता है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने एक अन्य इस प्रकार की भिन्न प्रक्रिया अपनायी जा रही प्रतीत होती है कि उत्तर प्रदेश उच्च न्यायालय (लेटर्स पेटेन्ट अपील का निरसन) अधिनियम, 1962 के कारण किसी अधिकरण अथवा अन्य अर्ध न्यायिक प्राधिकरण के निर्णयों तथा आदेशों के विरुद्ध प्रस्तुत की गई रिट याचिका (संविधान के अनुच्छेद 220 के अधीन याचिका) पर एकल न्यायाधीश द्वारा दिये गये आदेशों के विरुद्ध लेटर्स पेटेन्ट अपील निरसित होगी।

2.8.3 विधि आयोग का मत है कि जहां तक संविधान के अनुच्छेद 226 अथवा अनुच्छेद 227 के अधीन आवेदन पर एकल न्यायाधीश निर्णय और आदेश, चाहे आन्तरिक हो अथवा अन्तिम, के विरुद्ध लेटर्स पेटेन्ट अपील समाप्त करने के प्रस्ताव का संबंध है न ही तो यह उचित है और न ही वांछनीय/विभिन्न उच्च न्यायालयों में एकल न्यायाधीशों द्वारा निर्णित रिट याचिकाओं में सारपूर्ण हित अन्तर्निहित होते हैं और जिनके परिणाम राज्य तथा नागरिकों दोनों के लिए ही गम्भीर होते हैं, अक्सर रिट याचिका मूल एक कार्यवाही हैं। कुछ भी हो, सिविल न्यायालय अर्थात् उच्च न्यायालय में यह एक मूल कार्यवाही ही है। अनुच्छेद 226 के अधीन प्रस्तुत किये गये आवेदन पर एकल न्यायाधीश द्वारा दिये गये आदेश के विरुद्ध कम से कम एक अपील का प्रावधान होना ही चाहिए। प्रस्तावित प्रावधान निश्चित रूप से जनहित में नही है। क्योंकि यदि ऐसे प्रस्ताव को कार्यान्वित किया जाता है तो बहुत से मामलों में जनहित को क्षति पहुंचेगी। अत: विधि आयोग अनुच्छेद 226 अथवा 227 के अधीन एकल न्यायाधीश द्वारा दिये गये निर्णय और आदेशों के विरुद्ध लेटर्स पेटेन्ट अपील को समाप्त करने के प्रावधान का दृढ़ मत से विरोध करने की सिफारिश करता है। विभिन्न उच्च न्यायालयों में प्रचलित वर्तमान प्रक्रिया जारी रहनी चाहिए वास्तव में उत्तर प्रदेश अधिनियम 262 के कारण इलाहाबाद उच्च न्यायालय में दायर की गई रिट याचिकाओं में एकल न्यायाधीश के निर्णय तथा आदेशों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में बहुत बड़ी संख्या में अपील दायर की जा रही हैं।

2.8.4. मूल डिक्री के विरुद्ध (संहिता की धारा 96 के अधीन) अधीन में एकल न्यायाधीश के निर्णय तथा डिक्री के विरुद्ध लेटर्स पेटेन्ट अधीन समाप्त करने के प्रस्ताव के बारे में विभिन्न सम्मेलनों में तथा विभिन्न सरकारों, संगठनों तथा व्यक्तियों से प्राप्त प्रतिक्रियाओं में दो प्रकार के विचार सामने आये हैं। जहां एक विचार वर्तमान प्रक्रिया को बिना किसी परिवर्तन के जारी रखे जाने का पक्षधर है वहीं दूसरा विचार इस अधिकार को एकल न्यायाधीश के निर्णय से उत्पन केवल विधि के सारगर्भित प्रश्न तक, संहिता की धारा 100 की भांति, सीमित रखने के पक्ष में है। सम्मेलन में भाग लेने वाले कुछ सदस्यों ने प्रस्ताव का पूर्णरूप से समर्थन किया है। सम्मेलन में भाग लेने वाले अधिकांश सदस्यों का अन्ततः यही मत है कि ऐसी पहली अपीलों में एकल न्यायाधीश के अन्तरिम/अन्तवर्ती आदेशों के विरूद्ध लेटर्स पेटेन्ट अपील का उपबंध निरसित कर दिया जाना चाहिए और अन्तिम निर्णय/डिक्री के विरूद्ध लेटर्स पेटेन्ट अपील का प्रावधान सीमित रूप में बनाये रखा रहना चाहिए। उच्च न्यायालय के कुछ माननीय न्यायाधीशों ने यह सुझाव दिया था कि पहली अपील में एकल न्यायाधीश के निर्णय तथा डिक्री के विरूद्ध अधिक संख्या में लेटर्स पेटेन्ट अपील दायर नही की गई और जो दायर भी की गयी थी उनमें से अधिकांश ग्रहण स्तर पर ही रद्द कर दी गई ।

2.8.5 विधि आयोग का विचार है कि जहां तक पहली अपीलों में अन्तिम निर्णय और डिक्री (मूल वाद में दिये गये निर्णय और डिक्री के विरूद्ध प्रस्तुत की गई अपील) का सम्बंध है यह वांछनीय है कि ऐसे निर्णय तथा डिक्री के विरूद्ध लेटर्स पेटेन्ट अपील को पूरी तरह से समाप्त न किया जाये। ऐसे मामलों में लेटर्स पेटेन्ट अपील को संहिता की धारा 100 की भांति केवल विधि के सारगर्भित प्रश्नों तक सीमित रखने का सुझाव सराहनीय और स्वीकार्य है। यह सुधार इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए दिया गया है कि कतिपय उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि व्यवस्था के अनुसार ऐसी लेटर्स पेटेन्ट अपीलों में तथ्यों से संबंधित प्रश्नों का भी पुनर्विलोकन किया जा सकता है। यद्यपि, व्यवहारिक रूप से लेटर्स पेटेन्ट न्यायालय तथ्य की समवर्ती निष्कर्षों का ही सम्मान करता है। जैसे भी हो, केवल विधि के सारगर्भित प्रश्नों तक लेटर्स पेटेन्ट अपील को सीमित रखने न केवल इस प्रकार की लेटर्स पेटेन्ट अपीलों की संख्या कम हो जायेगी, अपितु ऐसी अपीलों के ग्रहण किये जाने की संख्या भी काफी कम हो जायेगी। ऐसी किसी भी अपील को अन्तरिम/अन्तवर्ती आदेशों के विरूद्ध प्रस्तुत किये जाने की अनुमति नहीं होनी चाहिए।

2.9. संशोधन विधेयक का खण्ड 11, वर्तमान धारा 102 के स्थान पर नई धारा प्रति स्थापित करने का प्रस्ताव :—

इस संशोधन के द्वारा न केवल वाद में विषय वस्तु के मूल्य को 3000/-रु० से बढ़ाकर 25000/-रु० करने का प्रस्ताव है , वाद के वर्तमान सीमित स्वरूप और रूप को भी समाप्त करने का प्रस्ताव है। दूसरे शब्दों में प्रस्तावित/प्रतिस्थापित धारा 102 के अनुसार कोई द्वितीय अपील किसी डिक्री से नहीं होगी जब मूलवाद की विषय वस्तु की रकम या मूल 25000/-रु० से अधिक नहीं है।

2.9.1 यहां सम्मेलन में भाग लेने वाले कुछ सदस्यों/प्रत्यर्थियों ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया वहीं कुछ सदस्यों ने विषय वस्तु के मूल्य को 3000 रु. से बढ़ाकर 25,000 करने के प्रस्ताव का स्वागत करते हुए वाद के रूप और स्वरूप की सीमा को समाप्त करने का विरोध किया। बहुत से सदस्यों ने यह बताया कि संहिता की धारा 11 में अन्तर्विष्ट उपबन्धों को ध्यान में रखते हुए, जिससे पूर्व न्याय का नियम दिया गया है, न्यायालयों की उन बहुत से वादों की डिक्रियां, जिन में विषय वस्तु का मूल्य 25,000 रु. से कम है। विषय वस्तु के बहुत अधिक मूल्यों के मामलों में ही पूर्व न्याय के नियम के रूप में मानी जाएगी।

2.9.2 विधि आयोग का मत है कि कि प्रस्तावित धारा 102 में जहां मूलवाद में विषय वस्तु का मूल्य 25000/-रु० से बढ़ाकर 50000/-रु० किया जाना चाहिए वहीं वाद के स्वरूप और रूप की सीमा को हटाने के प्रस्ताव को छोड़ दिया जाना चाहिए। इस समय यह उपबंध लघु वाद न्यायालयों द्वारा संज्ञेय स्वरूप के वादों तक सीमित है। यह स्मरण रखना चाहिए कि सभी मुद्दों पर दूसरी अपील नहीं की जा सकती अपितु यह केवल विधि के सारगर्भित प्रश्नों तक ही सीमित है। ऐसी स्थिति में सभी मामलों में जहां विषय वस्तु का मूल्य 25000/-रु० से अधिक नहीं है, दूसरी अपील को पूरी तरह से समाप्त करना एक उपयुक्त कदम नहीं होगा। विषय वस्तु का मूल्य 25000/-रु० से बढ़ाकर 50000/-रु० करने संबंधी विधि आयोग की सिफारिश का कारण सामान्यतया यह है कि धन संबंधी वाद अपेक्षाकृत सरल होते हैं और इस तथ्य की वृद्धि इस तथ्य के द्वारा होती है कि विधान मण्डल ने धन संबंधी बहुत से वादों में, उन में अन्तर्गत विषय वस्तु के मूल्यों पर ध्यान दिये बिना ही, संक्षिप्त प्रक्रिया का उपबंध करते हुए आदेश 37 अधिनियमित करना उपयुक्त समझा है। अन्य प्रकार के वादों में स्थिति भिन्न हो सकती है। इस संबंध में यह स्मरण कराया जा सकता है कि केवल स्थायी आदेश संबंधी वादों का मूल्य वाद में विषय वस्तु के मूल्य से असम्बद्ध कम आंका जाता है। यह वास्तव में विभिन्न न्यायालय फीस अधिनियमों द्वारा अनुमेय है। अत: प्रस्तावित प्रावधान से ऐसे मामलों में गम्भीर अन्याय होगा।

2.10 संशोधन विधेयक का खण्ड 12 धारा 115 की उपधारा (1) के परन्तुक के वर्तमान खण्ड (ख) को निकालने और धारा 115 में उपधारा (3) जोड़ने का प्रस्ताव :

धारा 115 की उपधारा (1) के परन्तुक के खण्ड (ख) को निकालने के प्रस्ताव का लगभग सभी ने विरोध किया। यह आग्रह किया गया कि न्याय के विफल हो जाने के मामलों को अथवा अपूर्णीय क्षति पहुँचाने वाले आदेशों को ठीक करने की शक्ति केवल उच्च न्यायालयों को प्राप्त होनी चाहिए। यह आग्रह किया गया कि उपर्युक्त खण्ड को निकालने का परिणाम अपीलीय न्यायालयों द्वारा अधिक मामलों में प्रतिपेषण होगा उत्तर प्रदेश में अधीनस्थ न्यायपालिका के केवल कुछ सदस्यों ने इस उपबंध का समर्थन किया। जहां तक उपधारा (3) अन्त:स्थापित करने का संबंध है इसका सभी ने स्वागत किया।

2.10.1 विधि आयोग जहां धारा 115 में उपधारा (3) अन्त:स्थापित किये जाने का समर्थन करता है वहीं उसका मत है कि उपधारा (1) के परन्तुक के खण्ड (ख) को निकालने का प्रस्ताव न तो उचित है और न ही इससे वादों को शीघ्र निपटाने का प्रयोजन सफल हो सकेगा। हो सकता है यह सच हो कि कुछ राज्यों में धारा 115 के अधीन अधिक हस्तक्षेप किया जाता हो और धारा की प्रतिबंधक भाषा का ध्यान न रखा जाता हो। निश्चित रूप से ऐसी बातों को हतोत्साहित किया जाना चाहिए । पुनरीक्षण की शक्ति का उपयोग करने वाले उच्च न्यायालयों तथा अन्य प्राधिकरणों का (उ०प्र० राज्य में पुनरीक्षण की शक्ति जिला न्यायाधीश को प्रदान की गई है) सदैव संहिता की धारा 99 में अन्तर्निहित महत्व, उद्देश्य और प्रयोजन को सदैव ध्यान में रखना चाहिए। धारा 99 इस अवधारणा पर आधारित है कि संहिता में प्रक्रियात्मक प्रावधान का प्रत्येक व्यतिक्रम अपीलीय न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप का समर्थन नहीं करता है और यह कि किसी निर्णय तथा डिक्री में हस्तक्षेप केवल वहीं अपेक्षित है जहां इस के व्यतिक्रम के परिणामस्वरूप पक्षकार के साथ सार पूर्ण पक्षपात किया गया हो। धारा 99 के पीछे यही भावना है कि "कोई डिक्री ऐसी गलती या अशुद्धि के लिए न उल्टी जायेगी या रूप-भेदित की जायेगी और न ही अपील में कोई मामला जो पक्षकारों या वाद हेतुओं के कुसंयोजन या वाद में किसी कार्यवाही में त्रुटि या अनियमितता से जो मामले के गुण दोष या न्यायालय के क्षेत्राधिकार को प्रभावित न करता हो प्रतिपेषित किया जाएगा"। परन्तु पुनरीक्षण की शक्ति का उपयोग करने वाले न्यायालयों के बार-बार हस्तक्षेप करने के आधार पर धारा 115 के परन्तुक के खण्ड (ख) को निकालने का प्रस्ताव आवश्यक नहीं है। इसका उपचार अन्यत्र अर्थात् पुनरीक्षण की शक्ति को नियन्त्रण तथा आत्मानुशासन के साथ प्रयोग करने में निहित है। यह नोट किया जा सकता है कि यह खण्ड भारत के विधि आयोग द्वारा अपनी 27वीं रिपोर्ट के पैरा 57 में पृष्ठ 25 पर की गई सिफारिश के अनुसरण में जोड़ा गया था। इस संबंध में इन प्रावधानों में अन्तर्निहित कारण उक्त रिपोर्ट के पैरा 56 से उद्धृत इस प्रकार है :—

> "56 जहाँ तक दूसरे प्रश्न का संबंध है, विधि आयोग ने अपने समक्ष रखे गये दृष्टिकोणों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि अन्तर्वर्ती आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण का अधिकार महत्वपूर्ण है जो समाप्त नहीं किया जाना चाहिए। किसी अन्तर्वर्ती आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण का अधिकार अक्षुण रखने के मामले मुख्य न्यायाधीश ने विधि आयोग के समक्ष निम्नलिखित विचार व्यक्त किया :—
>
> "अक्सर गलत आदेश दे दिए जाते हैं। यदि आदेश को तुरन्त चुनौती देना असंभव पाया जाए और उसे खारिज कर दिया जाए और यदि त्रुटि को अपील के अन्तिम आदेश में ठीक करने के लिए छोड़ दिया जाए, जबकि अपील की सुनवाई हो, तो मध्यवर्ती कार्यवाही अवश्य ही गलत आधार पर होगी और पक्षकारों को, तुरन्त समाधान का अवसर दिये बिना, आदेश का पालन करने के लिए बाध्य करना उचित नहीं होगा"।

विधि आयोग ने 14वीं रिपोर्ट में तदनुसार सिफारिश की कि धारा 115 में "निर्णीत मामला" नामक अभिव्यक्ति अन्तर्वर्ती आदेश के सम्मिलित करने के लिए परिभाषित की जानी चाहिए । धारा 115 में आवश्यक संशोधन का प्रस्ताव किया गया है "।

आयोग महसूस करता है कि धारा 115 में यह खण्ड जोड़ने के लिए बताये गये कारण, जो विधि आयोग की 27वीं रिपोर्ट के पैरा 56 में उद्धृत हैं, समुचित हैं और उनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि उक्त उपबन्ध को यथावत रखा जाए। अत: विधि आयोग सिफारिश करता है कि

धारा 115वीं उपधारा (1) के परन्तुक के खण्ड (ख) को निकालने का प्रस्ताव छोड़ दिया जावे। तथापि, उपधारा (3) का अन्त:स्थापन पूर्णत: उचित है।

2.11 संशोधन विधेयक का खण्ड 13, वर्तमान शब्दों ''ऐसी अवधि'' के स्थान पर जो ''कुल मिलाकर 30 दिन से अधिक न हो'' शब्द प्रतिस्थापित करने का प्रस्ताव है :

धारा 148 में न्यायालय के आदेशों के अंतर्गत निर्धारित अथवा स्वीकृत अवधि को बढ़ाने अथवा उसका विस्तार करने का प्रावधान है। इस संबंध में न्यायालय के स्वविवेकाधिकार को कुल मिलाकर 30 दिन की अवधि तक सीमित करने के प्रस्ताव का सभी ने इस आधार पर विरोध किया कि इससे न्यायालयों का स्वविवेकाधिकार अनावश्यक रूप से प्रतिबंधित होता है।

2.11.1 विधि आयोग का भी यह मत है कि धारा 148 पर इस प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं रखा जाना चाहिए। ऐसी स्थिति भी पैदा हो सकती है जब न्याय के हित में इस निर्धारित अवधि के परे भी धारा 148 के अधीन शक्ति का उपयोग करने की आवश्यकता पड़े कुछ मामलों में समय के इस प्रकार के प्रतिबन्ध से न्याय विफल हो जायेगा। अत: यह प्रस्ताव छोड़ दिया जाना चाहिए।

आदेशों का संशोधन

2.12 संशोधन विधेयक का खण्ड 14, आदेश 4 के नियम (क) का उपनियम (1) में संशोधन करने तथा आदेश 4 के नियम 1 में उपनियम (3) अन्तः स्थापित करने का प्रस्ताव :

उपनियम (1) का संशोधन औपचारिक स्वरूप का है और इसका विरोध नहीं किया गया है। परन्तु जहां तक उपनियम (3) अन्त:स्थापित करने के प्रस्ताव का संबंध है विभिन्न सम्मेलनों में बहुत से सदस्यों ने यह आशंका व्यक्त की थी कि ऐसे नियम से अनेकों जटिलताएं पैदा हो जायेंगी। आदेश 4 के नियम 1 के उपनियम (1) में यह व्यवस्था है कि प्रत्येक वाद न्यायालय के समक्ष अथवा उसके द्वारा नियुक्त किये गये पदाधिकारी के समक्ष वाद पत्र प्रस्तुत करके संस्थित किया जायेगा और उपनियम (2) में यह व्यवस्था है कि प्रत्येक वाद पत्र उन नियमों जो कि आदेश 6 एवं 7 में अन्तर्विष्ट हैं, जहां तक वे लागू होते हैं, के अनुसार होगा। प्रस्तावित उपनियम (3) में यह व्यवस्था है कि वाद पत्र तब तक सम्यक् रूप से संस्थित किया गया नहीं समझा जायेगा जब तक वह उपनियम (1) और उपनियम (2) में विनिर्दिष्ट अपेक्षाओं का अनुपालन नहीं करता है। प्रस्तावित नियम से प्रतिवादी द्वारा यह आपत्ति किये जाने की संभावना रहेगी कि वाद पत्र आदेश अथवा आदेश 7 की एक या दूसरी अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं है जिसके कारण वाद में और विलम्ब होगा। इसके अतिरिक्त सीमा की दृष्टि से भी प्रस्तावित उपनियम (3) से पर्याप्त कठिनाईयां पैदा हो सकती हैं। वर्तमान विधिक स्थिति यह है कि वाद पत्र प्रस्तुत करने की तिथि वाद दायर करने की तिथि समझी जाती है। यदि प्रस्तावित उपनियम (3) अन्त:स्थापित कर दिया जाता है तो यह नियम लागू नहीं हो सकेगा। एक समय सीमा दर्शायी जानी चाहिए जिसके अन्दर वाद पत्र प्रस्तुत करने सम्बन्धी सभी दोषों तथा आपत्तियों को दूर किया जा सके। अत: विधि आयोग सिफारिश करता है कि प्रस्तावित उपनियम (3) को छोड़ दिया जाये और इसके बजाए एक समय सीमा निर्धारित की जाए जिसके अन्दर वाद पत्र प्रस्तुत करने संबंधी सभी दोषों और आपत्तियों का समाधान कर लिया जाए। 30 दिन की समय सीमा इसके लिए उपयुक्त होगी।

2.13 संशोधन विधेयक का खण्ड 15, आदेश 5 के विभिन्न नियमों में संशोधन करने का प्रस्ताव :

संशोधन किये जाने वाले प्रत्येक नियम के बारे में पृथक रूप से विचार करेंगे।

(i) नियम 1 (1) का प्रस्तावित संशोधन आदेश 5 के नियम 1 के वर्तमान उपनियम (1) में यह व्यवस्था है कि ''जब कोई वाद सम्यक् रूप से दायर किया जा चुका हो तो प्रतिवादी को सम्मन जारी किया जाएगा कि वह उसमें किसी निर्दिष्ट दिन उपस्थित हो वादी के दावे का उत्तर दें; परन्तु यह कि प्रतिवादी वाद पत्र की पेशी पर ही उपस्थित हो गया हो और उसने वादी का दावा स्वीकार कर लिया हो तब कोई सम्मन न निकाला जाएगा; परन्तु यह और कि न्यायालय प्रतिवादी को अपनी उपसंजाति की तारीख पर अपनी प्रतिरक्षा का लिखित कथन ''यदि कोई हो फाईल करने का निर्देश दे सकेगा और सम्मन में इस आशय की प्रविष्टि करायेगा '' प्रस्तावित/प्रतिस्थापित उपनियम (1) के अनुसार प्रतिवादी द्वारा अपना लिखित कथन ''वाद के संस्थित किये जाने की तारीख से 30 दिन के भीतर ऐसे किसी दिन को जो सम्मन में विनिर्दिष्ट किया जाए, प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है। यद्यपि पहले परन्तुक में संशोधन करने का प्रस्ताव नहीं है दूसरे संशोधित परन्तुक में यह व्यवस्था है कि जहां प्रतिवादी उपनियम (1) में दी गई निर्धारित तिथियों पर अपना लिखित कथन फाईल करने में असफल रहता है, वहां उसे ऐसे किसी अन्य दिन को, उसे फाईल करने के लिए अनुज्ञात किया जायेगा, जो प्रतिवादी पर सम्मन की तामील की तारीख से 30 दिन से परे का नहीं होगा, जो न्यायालय ठीक समझे। यह सच है कि प्रस्तावित संशोधन वाद में शीघ्र प्रगति की चिन्ता से प्रेरित है परन्तु इस प्रकार की आज्ञापरक समय सीमाएं निर्धारित करते समय व्यावहारिक समस्याओं और परिस्थिति की वास्तविकताओं को ध्यान में रखना भी आवश्यक है। सभी वाद सरल स्वरूप के नहीं होते हैं। इनमें से कुछ जटिल होते हैं जिनमें प्रतिवादी को अपना लिखित कथन दायर करने से पूर्व तैयारी के लिए अच्छा समय चाहिए। हो सकता है कि कुछ मामलों में प्रतिवादी को अपना लिखित कथन दायर करने से पूर्व पर्याप्त सामग्री जुटानी पड़े। वाद पत्र में कथन के सम्बन्ध में वादी को कुछ स्पष्टीकरण मांगने भी आवश्यक हो सकते हैं । यह सब कुछ प्रस्तावित उपनियम (1) में निर्धारित अवधि के भीतर सम्भव नहीं हो सकता । जहां कुछ सदस्यों ने, विशेषतया वाद के सदस्यों ने, यह सुझाव दिया है कि ऐसी कोई समय सीमा नहीं रखी जानी चाहिए और यह कि नियम में न्यायालय के लिए वादी को अपना लिखित कथन

शीघ्रातिशीघ्र दायर करने के लिए बुलाने का केवल निर्देश होना चाहिए। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कुछ अन्य सदस्यों ने, विशेषकर न्यायपीठ के सदस्यों ने, लिखित कथन फाईल करने के लिए आवश्यक समय सीमा का दृढ़ समर्थन किया तथापि ये सदस्य इस बात से भी सहमत थे कि उपनियम (1) में प्रस्तावित समय सीमा अवास्तविक है और इसके कारण कुछ मामलों में न्याय विफल हो सकता है प्रस्तावित उपनियम (1) में प्रयुक्त ''वाद संस्थित किये जाने के दिन से 30 दिन के भीतर शब्दों के स्थान पर '' वाद संस्थित किए जाने के दिन से ''60 दिन के भीतर'' शब्द प्रतिस्थापित किये जाने से सभी सहमत थे और इसी प्रकार दूसरे परन्तुक में, ''प्रतिवादी को सम्मन जारी किये जाने के दिन से 30 दिन'' ''शब्दों के स्थान पर'' ''उपर्युक्त 60 दिन की अवधि समाप्त होने के दिन से 90 दिन'' शब्द प्रतिस्थापित किये जाने चाहिए।

2.13.1 विधि आयोग इस विचार से सहमत है कि संशोधन विधेयक के उपनियम (1) में प्रस्तावित समय सीमा कठोर है और इसका परिणाम कुछ मामलों में न्याय की विफलता हो सकता है। यह विशेषतया उन वादों में सच हो सकता है जिनमें सरकार प्रतिवादी होती है। अनुभव से पता चलता है कि उन मामलों में जहाँ सरकार प्रतिवादी होती है वहाँ प्राइवेट पार्टी के समान लिखित कथन शीघ्र फाईल नहीं किया जाता है। सरकारी विभागों के कार्यक्रम के स्वरूप और समन्वय की आवश्यकता तथा विभागों के बीच पारस्परिक पत्राचार के कारण लिखित कथन फाईल करने में सामान्यतया अधिक समय लगता है। यह सच है कि वादों को शीघ्र निपटाने के हित में लिखित कथन फाईल करने की अवधि कम की जानी चाहिए परन्तु उसे ऐसे रूप में नहीं किया जाना चाहिए जिसके परिणाम प्रतिकूल हों अत: विधि आयोग का मत है कि उपनियम (1) में निर्धारित ''30 दिन'' शब्दों के स्थान पर ''60 दिन'' किया जाना चाहिए और उप नियम (1) के दूसरे परन्तुक में निर्धारित ''30 दिन'' की सीमा अवधि को ''90 दिन'' की अवधि की गणना उपनियम (1) में निर्धारित ''60 दिन'' की अवधि समाप्त होने की तिथि से की जानी चाहिए ।

(ii) **नियम 9 का प्रस्तावित प्रतिस्थापन:**

2.13.2 नियम 9 के प्रस्तावित प्रतिस्थापन में प्रतिवादी को अन्य अनुपूरक साधनों से सम्मन भेजने का प्रावधान है जो वर्तमान में नियम 9 के उपनियम (1) में विनिर्दिष्ट नहीं है। वर्तमान उपनियम में सम्मन तामील कराने का दायित्व वादी पर है। उपनियम (1) में यह व्यवस्था है कि ''न्यायालय सम्मन जारी करेगा और तामील के लिए वादी को अथवा उसके किसी अभिकर्ता को उसका परिदान करेगा .....''। जहाँ प्रस्तावित उपनियम (1) का सामान्यरूप से स्वागत किया गया, जिसमें स्पीड पोस्ट, कुरियर सेवा, फैक्स तथा ई-मेल जैसे संचार की नई तथा आधुनिक प्रणाली का लाभ उठाने का विचार किया गया है, वहाँ प्रतिवादी को तामील करने के लिए वादी को सम्मन प्रदान करने के प्रस्ताव का बार तथा न्यायपीठ दोनों के ही सदस्यों द्वारा एक मत से विरोध किया गया। यह आग्रह किया गया कि सम्मन नियम 9 के उपनियम (1) में विनिर्दिष्ट किसी भी रूप में न्यायालय द्वारा ही भेजे जाने चाहिए, यद्यपि, ऐसा वादी के खर्च पर किया जा सकता है। सम्मेलन में भाग लेने वाले बहुत सदस्यों ने ऐसी आशंका व्यक्त की कि प्रतिवादी पर तामील करने के लिए वादी को सम्मन भेजने से अपकार और धोखाधड़ी की संभावना रहेगी। विधि आयोग इस विचार से सहमत है और तद्नुसार सिफारिश करता है कि जहाँ नियम 9 के उपनियम (1), प्रस्तावित, को स्वीकार किया जा सकता है। उक्त उपनियम में प्रयुक्त शब्दावली जिसमें वादी अथवा उसके अभिकर्ता को प्रतिवादी पर तामील करने के लिए सम्मन प्रदान करने की व्यवस्था है, निकाल दी जानी चाहिए और संहिता में विनिर्दिष्ट किसी भी रूप में सम्मन न्यायालय द्वारा ही भेजे जाने चाहिए और ऐसा वादी के खर्चे पर किया जा सकता है।

2.13.3 जहाँ तक नये नियम 9 के उपनियम (2) का संबंध है इसको भी उसी प्रकार संशोधित किए जाने की आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में, न्यायालय के माध्यम से परम्परागत रूप में सम्मन भेजने का कार्य केवल न्यायालय द्वारा ही किया जाएगा, वादी के माध्यम से नहीं। यह सुझाव दिया गया था कि उपनियम में यह उल्लेख होना चाहिए कि न्यायालय का कार्यालय/रजिस्ट्री सम्मन फाईल किए जाने के सात दिन के भीतर वादी के खर्चे पर सम्मन भेजेगा।

2.13.4 सम्मेलन में भाग लेने वाले कुछ सदस्यों द्वारा यह सुझाव भी दिया गया था कि उपनियम (3) में यह व्यवस्था भी होनी चाहिए कि जहाँ किसी डाक कर्मचारी अथवा किसी प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा ऐसा पृष्ठांकन किया गया हो कि प्रतिवादी अथवा उसके अभिकर्ता ने डाक की कोई वस्तु जिसमें सम्मन रखे गये थे, उसे प्राप्त करने से इन्कार किया है अथवा उपनियम (1) में विनिर्दिष्ट किसी अन्य पद्धति से सम्मन प्राप्त करने से इन्कार किया है वहाँ न्यायालय यह घोषित करने से पूर्व कि सम्मन प्रतिवादी या उसके किसी अभिकर्ता पर सम्यक् रूप से तामील कर दिए गये हैं, एक उपयुक्त जाँच कराएगा और ऐसी घोषणा तभी करेगा जब वह इस बात से सन्तुष्ट हो कि पृष्ठांकन सच था। इस प्रयोजन से न्यायालय को डाक कर्मचारी अथवा किसी अन्य प्राधिकृत व्यक्ति को बुलाने की और जहाँ आवश्यक हो शपथ दिलाकर उसके कथन का रिकार्ड करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए। आयोग ने अपनी 140वीं रिपोर्ट के पैरा 6.1 में यह टिप्पणी की है कि बहुत बड़ी संख्या में रिपोर्ट किए गए ऐसे मामलों की हम अनदेखी नहीं कर सकते जिनमें बेईमान डाक कर्मचारी की सहायता से की गई धोखाधड़ी अथवा किसी गलत व्यक्ति को डाक की वस्तु सौंपने की चूक के परिणामस्वरूप अन्याय हुआ है। इस दृष्टि से विधि आयोग इस सुझाव से सहमत है।

(iii) प्रस्तावित नया नियम 9क

2.13.5 सम्मेलन में भाग लेने वाले सदस्यों ने यह सुझाव दिया था और विधि आयोग का भी यह मत है कि प्रस्तावित नियम 9-क के उपनियम (1) के आरम्भिक शब्द इस प्रकार होने चाहिए :

"न्यायालय, नियम 9 में उपबन्धित रूप में सम्मन जारी करने के साथ तथा इसके अतिरिक्त . . . . . "

दूसरे शब्दों में, न्यायालय द्वारा सम्मन प्रदान करने की सामान्य प्रणाली, नियम 9 के उपनियम (1) में विनिर्दिष्ट तामील करने की किसी अन्य पद्धति के अतिरिक्त, आवश्यक होगी। आदेश 5 में अन्य प्रस्तावित संशोधन न्यायोचित है।

2.14 संशोधन विधेयक का खण्ड 14, आदेश 6 के कतिपय नियमों में संशोधन करने का प्रस्ताव :

(i) संशोधन विधेयक के खण्ड 16 के उपखण्ड (1) में आदेश 6 के नियम 5 का लोप करने का प्रस्ताव है। उक्त नियम न्यायालय को पक्षकारों को दावों अथवा प्रतिरक्षा के स्वरूप का बेहतर विवरण प्रस्तुत करने अथवा किसी अभिवचन में कथित मामलों के बेहतर विवरण प्रस्तुत करने के लिए निदेश की शक्ति प्रदान करता है। सम्भवतया इस नियम का इस आधार पर लोप करने का प्रस्ताव किया गया है कि परिप्रश्न परिदत्त करने के प्रावधान तथा जाँच से संबंधित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए यह अनावश्यक है (इस खण्ड पर दिए टिप्पण से पता चलता है कि संहिता में प्रस्तावित अन्य परिवर्तनों के अनुरूप ही यह लोप किया जा रहा है) । यद्यपि, कुछ सदस्यों ने इस नियम का लोप किये जाने का विरोध किया था, विधि आयोग का विचार है कि वर्तमान नियम 5 का लोप किया जा सकता है।

(ii) नियम 15 के उपनियम (3) के पश्चात् उपनियम (4) के प्रस्तावित अन्त:स्थापन में यह व्यवस्था है कि अभिवचन का सत्यापन करने वाला व्यक्ति अपने अभिवचनों के समर्थन में एक शपथ-पत्र प्रस्तुत करेगा। इस विषय में आयोग उपर्युक्त 2.6 में पहले ही विचार कर चुका है।

(iii) आदेश 6 के नियम 17 (और नियम 8 के परिणामिक उपबंध) को निकालने के प्रस्ताव का बार तथा न्यायपीठ दोनों के ही सदस्यों ने एक मत से विरोध किया। सभी सदस्यों ने नियम 17 को बनाये रखने का तर्क दिया है परन्तु इस संबंध में दो प्रकार के विचार सामने आये; एक विचार के अनुसार वर्तमान नियम को ज्यों का त्यों छोड़ दिया जाना चाहिए। यह बताया गया था कि उपयुक्त मामलों में उच्चतम न्यायालय ने अभिवचनों को उच्चतम न्यायालय में अपील के स्तर पर संशोधित किए जाने की स्वीकृति दी है। यह भी पाया गया है कि विधि में परवर्ती परिवर्तन तथा बाद में नये संगत तथ्यों का पता चलने सहित बहुत सी परिस्थितियाँ पैदा हो सकती हैं जिनके कारण अभिवचनों में संशोधन करना आवश्यक हो जावेगा। ऐसी स्थिति में, यह सुझाव दिया गया कि उपयुक्त शर्तों पर संशोधन की अनुमति देने संबंधी न्यायालय की शक्ति में किसी भी रूप में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। दूसरे विचार के अनुसार संशोधन की यह शक्ति सीमित होनी चाहिए। न्यायपीठ के सदस्यों ने, विशेषरूप में, यह सुझाव दिया कि एक बार वाद का विचारण आरम्भ हो जाने के पश्चात् संशोधन के लिए आवेदन स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, सभी प्रकार के संशोधन विचारण आरम्भ होने से पूर्व ही किये जाने चाहिए। ऐसे मामलों को छोड़कर जहाँ विधि में परवर्ती परिवर्तन के कारण या वाद की ऐसी परिस्थितियों के कारण संशोधन करना आवश्यक हो गया हो, विचारण आरम्भ होने के बाद किसी भी प्रकार के संशोधन की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इस विचार के समर्थकों के अनुसार अभिवचनों के संशोधनों के प्रावधान का पक्षकारों द्वारा विचारण में विलम्ब करने तथा दूसरे पक्ष को परेशान करने के विचार से, दुरूपयोग किया जा रहा है। यह आग्रह किया गया कि अक्सर वाद को विचारण के लिए ले जाने की तिथि को ही संशोधन के लिये आवेदन लिए जाते हैं और इसके पीछे एकमात्र विचार वाद का विचारण आरम्भ होने से रोकना है क्योंकि पक्षकार इसके लिए तत्पर नहीं होता अथवा उस समय उसके लिए विचारण का चलना सुविधाजनक नहीं होता। यह सुझाव दिया गया कि ऐसे प्रयासों को हतोत्साहित किया जाना चाहिए और इसी कारण से यह सुझाव दिया गया कि एक बार विचारण आरम्भ हो जाने पर संशोधन के लिए आवेदन करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और यह कि विचारण आरम्भ होने की तिथि को इस प्रकार का कोई आवेदन स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। विधि आयोग का यह मत है कि अभिवचनों के संशोधन की यह शक्ति नहीं छीनी जानी चाहिए। तथापि साथ ही यह सुनिश्चित करना भी आवश्यक है कि इस प्रावधान का दुरुपयोग न किया जाये और विचारण में आरम्भ होने तथा उसकी प्रगति में विलम्ब करने के लिए भी इसका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। विधि आयोग, उपर्युक्त उल्लिखित दूसरी विचारधारा से सहमत है। दूसरे शब्दों में नियम में यह व्यवस्था होनी चाहिए कि केवल उन मामलों को छोड़कर जहाँ न्यायालय यह समझता हो कि विवाद्यकों का निबंधन तैयार करने के पश्चात विधि में बाद के किसी परिवर्तन के कारण अथवा विवाद्यकों का निबंधन तैयार करने के पश्चात् आवेदक के ज्ञान में आये किसी तथ्य के कारण जिसका वह विवाद्यकों के निर्बंधन से पूर्व पता नहीं लगा पाया था, संशोधन आवश्यक हो गया है अभिवचनों में किसी संशोधन की स्वीकृति नहीं दी जाएगी और जिस तिथि को विचारण आरम्भ होना है उस तिथि को संशोधन के लिए कोई आवेदन स्वीकार नहीं किया जाएगा। एक बार विचारण आरम्भ हो जाने पर, विधिक अथवा तथ्यात्मक परवर्ती परिवर्तनों के कारण जहां संशोधन आवश्यक हो गया है उन मामलों को छोड़कर किसी भी संशोधन की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। नियम 18 परिणामिक स्वरूप का है अत: इस पर पृथक रूप में टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है।

2.15 संशोधन विधेयक का खण्ड 17 :

(i) संशोधन विधेयक के खण्ड 17 आदेश 7 के नियम 9, जो वाद पत्रों को स्वीकार करने संबंधी प्रक्रिया के बारे में है, में संशोधन करने का प्रस्ताव है। प्रस्ताव में आदेश में नियम 9 प्रतिस्थापित करने का विचार किया गया है। इसे इस केवियट के अधीन प्रभावी बनाया जा सकता है कि सम्मन वादी द्वारा नहीं अपितु न्यायालय द्वारा तामील कराये जाएंगे जैसा कि यहाँ आदेश 5 पर ऊपर हुई चर्चा के समय बताया गया है।

(ii) खण्ड 17 के उपखण्ड (II) प्रस्तावित आधारों को भी, जिन पर वाद-पत्र खारिज किया जा सकता है, इस आशय के "राइडर" के अध्यधीन सम्मिलित किया जा सकता है कि यह स्पष्ट रूप में दर्शाया जाये कि आदेश 7 के नियम II में प्रत्येक प्रस्तावित उपखण्ड (ङ), (च) और (छ) में उल्लिखित असफलता की पुनरावृति हुई है।

(iii) नियम 14 का प्रस्तावित प्रतिस्थापन सही दिशा में उठाया गया एक कदम है परन्तु सम्मेलन में भाग लेने वाले सदस्यों द्वारा दिया एकमात्र यह सुझाव—जिससे विधि आयोग सहमत है— यह है कि वादी को वहाँ मूल दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए जहाँ यह आशंका हो कि न्यायालय के रजिस्ट्री कार्यालय के नियन्त्रणाधीन उस दस्तावेज में उलटफेर किया जा सकता है। वादी को उन दस्तावेजों की, जिनके बारे में उसे न्यायालय के रजिस्ट्री नियंत्रण में छेड़छाड़ किए जाने की आशंका है, जीरोक्स प्रतियाँ प्रस्तुत करने की अनुमति होनी चाहिए। परन्तु विचारण में अथवा जब न्यायालय द्वारा मांगे जाएं तब उनका प्रस्तुत किया जाना उसके लिए बाध्यकारी होगा।

2.15.1 सम्मेलनों में भाग लेने वाले बहुत से सदस्यों ने यह सुझाव दिया कि नियम 14 के उपनियम (3) की शब्दावली इस प्रकार की होनी चाहिए कि विशेष कारण लेखबद्ध करके न्यायालय को उस दस्तावेज अथवा उसकी प्रति प्रस्तुत करने की वादी को अनुमति देने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए जो वह वाद-पत्र के साथ प्रस्तुत नहीं कर सका है। आयोग के अनुसार यह एक अच्छा सुझाव है। तदनुसार, नियम 14 के उपनियम (3) की शब्दावली इस प्रकार संशोधित की जाए ताकि न्यायालय वादी को उस दस्तावेज या उसकी एक प्रति प्रस्तुत करने की अनुमति दे सके जो कि उसने वाद-पत्र के साथ प्रस्तुत नहीं की है।

(iv) संशोधन विधेयक में प्रस्तावित आदेश 7 के नियम 14 (2) की दृष्टि से आदेश 7 के नियम 15 को निकालने का प्रस्ताव संगत है।

(v) संशोधन विधेयक के खण्ड 17 के उपखण्ड (5) में नियम 18 के उपनियम (1) में "न्यायालय की इजाज़त के बिना" शब्दों का लोप करने का प्रस्ताव है। यह प्रस्ताव प्रस्तावित नियम 14 में स्पष्ट रूप से विद्यमान है।

2.16 संशोधन विधेयक का खण्ड 18 :

(i) आदेश 8 में प्रस्तावित/प्रतिस्थापित नियम 1 में यह उपबन्धित है कि प्रतिवादी अपनी प्रतिरक्षा का लिखित कथन पहली सुनवाई के समय या उससे पहले या उतने समय के भीतर जितना न्यायालय अनुज्ञात करे, जो प्रतिवादी को सम्मन तामील करने की तारीख से 30 दिन से अधिक नहीं होगा, उपस्थित करेगा। इस पहलू पर आदेश 5 पर चर्चा करते समय विचार किया गया है। पहले जो कारण बताये गए हैं उनके अनुसार लिखित कथन प्रस्तुत करने के लिए निर्धारित अवधि विधि आयोग द्वारा आदेश 5 में प्रस्तावित संशोधनों पर चर्चा करते समय सुझाई गई अवधि के अनुरूप होनी चाहिए।

(ii) आदेश 8 में नियम 1 का आदेश 7 के प्रस्तावित/प्रतिस्थापित नियम 14 की भाँति ही अन्तस्थापित करने का विचार किया गया है इसलिए आदेश 7 के प्रस्तावित नियम 14 के बारे में हमने जो कुछ भी कहा है वही इस प्रस्ताव के लिए भी सभी प्रकार से लागू होता है।

(iii) नियम 8-क को निकालने का प्रस्ताव प्रस्तावित नियम 1-क के अनुरूप ही है और इसलिए इस बात को छोड़कर आपत्तिजनक नहीं है कि प्रतिवादी को ऐसा दस्तावेज जो वह लिखित कथन के साथ प्रस्तुत न कर सका, प्रस्तुत करने की अनुमति देने की न्यायालय की शक्ति को इस राईडर के साथ कि ऐसी शक्ति पृष्ठांकित किये जाने वाले केवल विशिष्ट कारणों से ही उपयोग की जाएगी, अनुरक्षित रखी जानी चाहिए।

(iv) नियम 9 को निकालने का प्रस्ताव वांछनीय प्रतीत नहीं होता है। यह कहना एक बात है कि प्रतिवादी के लिखित कथन के पश्चात् कोई भी अभिवचन प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जाएगी और नियम 9 को पूरी तरह से निकाल देना पूरी तरह से एक भिन्न बात है। नियम 9 को निकाल देने से प्रतिरक्षा के रूप में परवर्ती अभिवचन फाईल करने का अवसर अथवा प्रतिदावे का अवसर भी समाप्त हो जाएगा, जो एक बहुत गम्भीर बात होगी। प्रतिवादी को उपलब्ध ऐसे अवसर को छीना नहीं जाना चाहिए। नियम 9 को निकालने के लिए न विधेयक के साथ संलग्न उद्देश्यों और कारणों के विवरण में और न ही खण्डों पर दिये गये टिप्पण में कोई कारण बताए गए हैं। श्रीमती शान्ति रानी दिवान जी बनाम दिनेश चन्द्र डे (मृतक) **एल.आर.एस. 1997 (6)** स्केल 260 मामले में 1987 (3) सु.को. 265 का उल्लेख करते समय यह अभिनिर्धारित किया गया :

> "2. . . . . इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 8 के नियम 6-क के अन्तर्गत प्रतिदावा फाईल करने का अधिकार वाद हेतुक बनने की तारीख को निर्दिष्ट किया जा सकेगा यदि वाद हेतुक वाद संस्थित किए जाने से पूर्व अथवा उसके पश्चात बना है और वह वाद हेतुक लिखित कथन फाईल करने की तारीख तक, अथवा लिखित कथन फाईल करने की बढ़ाई गयी तारीख तक बना रहता है तो लिखित कथन फाईल करने के पश्चात भी ऐसा प्रतिदावा दायर किया जा सकता है . . . ."

श्री जगमोहन चावला बनाम डेरा राजा स्वामी सत्संग 1996 . . . . . (4) स्केल 585, 587 मामले में नियम 6 के अन्तर्गत सीमाओं के बारे में निम्नलिखित टिप्पणी की गई है :—

> "5. . . . . केवल सीमा यह है कि वाद हेतुक लिखित कथन प्रस्तुत करने के लिए निर्धारित समय समाप्त होने से पूर्व बनना चाहिए। प्रतिवादी वाद संस्थित किए जाने के पश्चात भी बनने वाले वाद हेतुक को भी प्रस्तुत कर सकता है . . . . . "

अत: विधि आयोग का मत है कि या तो नियम 9 को निकालने के प्रस्ताव को छोड़ दिया जाना चाहिए अथवा इसकी शब्दावली इस प्रकार की होनी चाहिए कि प्रतिवादी के लिखित कथन के पश्चात किसी अभिवचन को केवल प्रतिरक्षा के रूप में अथवा प्रतिदावे के रूप में अनुमति दी जाएगी।

(v) आदेश 8 के नियम 10 को निकालने के प्रस्ताव का अर्थ यह है कि न्यायालय लिखित कथन प्रस्तुत करने में प्रतिवादी की असफलता पर अब ऐसा आदेश देने के लिए स्वतन्त्र होगा जो वह उचित समझता है। सम्भवतया नियम 10 को निकालने के पीछे यह विचार है कि यह नियम अनावश्यक है। हो सकता है नियम 10 न्यायालय के लिए केवल मार्गदर्शन का कार्य करता है। प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन प्रस्तुत करने में असफल रहने में न्यायालय प्रतिवादी के विरूद्ध निर्णय देने अथवा ऐसा उपयुक्त आदेश देने के लिए स्वतंत्र है जो वह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए उचित समझता हो। वास्तव में नियम 10 से वादों के निपटारे में किसी रूप में भी कोई विलम्ब नहीं होता है। नियम को निकालने की अपेक्षा इसे बनाए रखना अधिक उपयुक्त हो सकता है।

2.17 संशोधन विधेयक का खण्ड 19, आदेश 9 के नियम 5 में संशोधन और नियम 2 प्रतिस्थापित करने का प्रस्ताव :

(i) आदेश 9 में प्रतिस्थापित प्रस्तावित नियम 2 में यह व्यवस्था है कि "जहाँ ऐसे नियत दिन को यह पाया जाए कि सम्मन दो दिन की अनुबद्ध अवधि के भीतर वादी या उसके अभिकर्ता द्वारा या उनके द्वारा न्यायालय फीस या किन्हीं प्रभावों का जो ऐसी तामील के लिए प्रभार्य हों, संदाय करने में असफल रहने के परिणामस्वरूप प्रतिवादी को नहीं भेजा गया है, वहाँ न्यायालय यह आदेश कर सकेगा कि वाद खारिज दिया जाए।" (परन्तुक का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है) विधि आयोग की इस सिफारिश को देखते हुए कि सम्मन न्यायालय द्वारा भेजे जाने चाहिए (प्रतिवादी द्वारा नहीं), नि:संदेह प्रतिवादी के खर्चे पर, इस नियम की शब्दावली को उसके अनुरूप ही पुन: निश्चित करने की आवश्यकता है। अपेक्षित अधिभारों, न्यायालय फीस का संदाय न करने और/अथवा न्यायालय द्वारा सम्मन भेजे जाने के लिए आवश्यक कदम न उठाये जाने के लिए जुर्माना किया जाना चाहिए।

(ii) नियम 5 के संशोधन का आशय नये सम्मन जारी करने के लिए आवेदन करने हेतु अवधि को एक महीने से कम करके सात दिन करने से है। संशोधन आपत्तिजनक नहीं है।

2.18 संशोधन विधेयक का खण्ड 20, आदेश 10 का संशोधन करने का प्रस्ताव :—

संशोधन विधेयक के खण्ड 20 में आदेश 10 के नियम 1 के पश्चात नियम 1-क, 1-ख और 1-ग अन्त:स्थापित करने तथा नियम 4 का संशोधन करने का प्रस्ताव है। जहाँ तक आदेश 10 में नियम 1-क, 1-ख और 1-ग अन्त:स्थापित करने का प्रस्ताव है, यह देखा जा सकता है कि वे प्रस्तावित धारा 89 की पद्धति पर ही हैं अन्तर केवल इतना है कि इस आदेश के नियम 1-क में प्रयुक्त शब्दावली और प्रस्तावित धारा 89, जिसे विधेयक के खण्ड 7 द्वारा अन्त:स्थापित करने का विचार किया गया है, में प्रयुक्त शब्दावली में भिन्नता है। नियम-1क का पाठ इस प्रकार है जैसे कि न्यायालय पक्षकारों से स्वीकृतियों और प्रत्याख्यानों को अभिलिखित करने के पश्चात, न्यायालय से बाहर समझौते की कोई भी पद्धति अपनाने के लिए, जैसा कि प्रस्तावित धारा 89 (1) में विनिर्दिष्ट किया गया है, कहने के लिए आदेशाधीन है। दूसरी ओर प्रस्तावित धारा 89 की भाषा सामर्थ्यकारी है। यह न्यायालय को ऐसे विशिष्ट कदम उठाने में समर्थ बनाती है यदि उसे ऐसा प्रतीत होता है कि समझौते के ऐसे तत्व विद्यमान् हैं जो पक्षकारों को स्वीकार्य हैं। कुछ भी हो धारा 89 के बारे में आयोग द्वारा व्यक्त किया गया मत आदेश 10 में प्रस्तावित नियम 1-क, 1-ख और 1-ग के संबंध में भी संगत होना चाहिए। वास्तव में, नियम 1-ख और 1-ग में केवल स्वयं कथन है जबकि नियम 1-क में, जैसाकि ऊपर बताया गया है, वास्तव में प्रस्तावित धारा 89 के प्रावधानों को प्रभावी बनाने का आशय अन्तर्निहित है।

(iii) नियम 4 (1) का संशोधन केवल समय सीमा कम करने के लिए किया गया है और यह सही दिशा में उठाया गया कदम है।

2.19 इस खण्ड के द्वारा आदेश 13 में नियम तथा 2 प्रतिस्थापित करने का विचार है। ये संशोधन प्रस्तावित आदेश नियम 14 तथा प्रस्तावित आदेश 8 नियम 1-क के अनुरूप हैं। उक्त आदेशों के संशोधनों पर विचार करते हुए आयोग द्वारा निर्दिष्ट एक मामले में बताया गया कि वास्तव में, आदेश 13 के नियम 1 में ऐसी परिस्थितियाँ अभिव्यक्त रूप से अवधारित की गई हैं जहाँ मूल दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किए जाते अपितु वाद पत्रों अथवा लिखित कथन के साथ उन दस्तावेजों की प्रतियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। विवादों के निपटारे से पूर्व मूल दस्तावेज प्रस्तुत करना विचाराधीन खण्ड के अन्तर्गत सृजित बाध्यता है। यह अधिक उपयुक्त होगा यदि यह मामला न्यायालय पर छोड़ा जाए कि मूल दस्तावेज किस स्तर पर प्रस्तुत किए जाने चाहिएँ। यह विचारण के समय भी किया जा सकता है। यह मामला न्यायालय के स्वविवेकाधिकार पर छोड़ दिया जाना चाहिए । न्यायालय ही पक्षकारों को उपयुक्त स्तर पर मूल दस्तावेज प्रस्तुत करने का निदेश देगा। इस स्पष्टीकरण के बाद यह कहा जा सकता है कि आदेश 8 के संशोधन उपयुक्त हैं।

2.20 संशोधन विधेयक का खण्ड 20 :— (i) आदेश 14 के नियम 4 का संशोधन उपयुक्त है। इसमें केवल समय सीमा को कम करने का विचार किया गया है।

(ii) तथापि, आदेश 14 के नियम 5 को निकालने का प्रस्ताव आपत्तिजनक है। सम्मेलन में भाग लेने वाले सदस्यों ने बताया कि विवाद्यकों का संशोधन करना अथवा अतिरिक्त विवाद्यकों का निबंधन करना सदैव न्यायालय की शक्ति में होना चाहिए और न्यायालय को ऐसी शक्ति का उपयोग वाद के किसी भी स्तर पर किए जाने का अधिकार होना चाहिए। वर्तमान नियम 5 न्यायालय को उन विवाद्यकों को निकालने की शक्ति प्रदान करता है जो न्यायालय के विचार में त्रुटिपूर्ण हैं अथवा अनावश्यक हैं। आयोग का मत है कि नियम 5 को निकालने का कोई ठोस कारण नहीं है।

2.21 संशोधन विधेयक का खण्ड 26 : संशोधन विधेयक के इस खण्ड में आदेश 17 के नियम 1 के उपनियम (1) को प्रतिस्थापित करने तथा उपनियम (2) का संशोधन करने का प्रस्ताव है। नियम 1 में प्रतिस्थापित किए जाने वाले उपनियम (1) में यह अपेक्षा की गई है कि न्यायालय वाद की सुनवाई के प्रत्येक स्थगन के लिए लिखित रूप में कारण दर्ज करेगा। इसके अतिरिक्त इस उपबन्ध में स्थगनों की अधिकतम संख्या निर्धारित की गई है जो वाद की सुनवाई के दौरान किसी पक्षकार के लिए स्वीकार किए जा सकते हैं। यह प्रत्यक्ष है कि इस उपनियम में अवधारित स्थगन पक्षकार के अनुरोध पर स्वीकार किया गया स्थगन है न कि मामले को न्यायालय द्वारा सुनवाई के लिए न लिए जाने के कारण अथवा किसी अन्य कारण से न्यायालय द्वारा मामले की सुनवाई के लिए न लिए जाने के कारण किया गया स्थगन है। इस पर भी, बार के सदस्यों ने प्रस्तावित संशोधन का दृढ़ रूप से विरोध किया जबकि न्यायपीठ के सदस्यों ने संशोधन का समर्थन किया। सम्मेलन में भाग लेने वालों ने एक यह सुझाव दिया कि पक्षकार के मौखिक अनुरोध पर स्थगन स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए और स्थगन के लिए प्रत्येक अनुरोध आवेदन देकर किया जाना चाहिए। यह आवेदन या तो संबंधित एडवोकेट द्वारा सत्यापित किया जाना चाहिए अथवा यह पक्षकार के शपथपत्र द्वारा समर्थित होना चाहिए। एक यह सुझाव भी दिया गया कि पक्षकार के अनुरोध पर स्वीकार किए जाने वाले स्थगनों की अधिकतम संख्या निर्धारित करने के बजाय ऐसे प्रत्येक स्थगन के लिए खर्चा निर्धारित करना बाध्यकारी बनाया जाना चाहिए और प्रत्येक अगले स्थगन के लिए खर्चे की राशि में पर्याप्त वृद्धि की जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में, यदि पहले स्थगन में खर्चे की राशि 100/- रुपये तो दूसरे स्थगन में खर्चे की राशि की गणना 300/- रुपये निश्चित की जानी चाहिए। फिर भी एक यह सुझाव दिया गया कि जहाँ कोई स्थगन खर्चे की राशि नियत करके स्वीकार किया जाता है वहाँ दूसरे पक्ष को खर्चे की पूरी राशि दिलायी जानी चाहिए न कि मनमाने ढंग से निश्चित की गई राशि। उदाहरण के लिए, यदि किसी मामले में कोई पक्ष साक्ष्य के लिए अपने साक्षियों को लेकर आता है परन्तु दूसरा पक्ष स्थगन मांगता है तब स्थगन मांगने वाले पक्षकार द्वारा साथियों को लाने वाले पक्षकार को उसके द्वारा सभी प्रकार के प्रबंध करने पर खर्च की गई पूरी तथा वास्तविक राशि की प्रतिपूर्ति की जानी चाहिए। इस संबंध में यह आग्रह किया गया कि आदेश 17 के नियम 1 के परन्तुक में खण्ड (ड़) "कर सकेगा, जो वह ठीक समझे" के स्थान पर "करेगा" शब्द प्रतिस्थापित किए जाने चाहिए। इस संबंध में व्यक्त किया गया दूसरा विचार यह था कि "करेगा, जब तक कि न्यायालय उसके विशिष्ट कारण अभिलिखित न करे" शब्द प्रतिस्थापित किए जाने चाहिए। न्यायपीठ के सदस्यों ने आग्रह किया कि जब तक किसी पक्षकार के लिए स्वीकृत किए जाने वाले स्थगनों की संख्या की अधिकतम सीमा निश्चित नहीं की जाती, वादों का शीघ्र निपटारा सुनिश्चित नहीं कराया जा सकता। यह भी बताया गया कि स्थगन मंजूर करने के लिए बार के सदस्य न्यायालयों पर कई रूप से दबाव डालते हैं। अक्सर, विरोधी काउंसेल भी अनुरोध का विरोध नहीं करते। कभी-कभी, जब वाद विचारण के लिए लिया जाता है तब भी, दोनों पक्षों द्वारा ऐसा अनुरोध किया जाता है और न्यायालय विवश हो जाता है। कतिपय विचारण न्यायधीशों ने यह सुझाव दिया है कि एक बार वाद पर विचारण निश्चित हो जाने पर और न्यायालय के उस दिन वाद को सुनवाई के लिए लेने की स्थिति में होने पर, कोई भी स्थगन, एक पक्षकार के अनुरोध पर अथवा दोनों के संयुक्त अनुरोध पर, मंजूर नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि कोई ऐसा मामला न हो जहाँ वाद के किसी पक्षकार की मृत्यु हो गई हो अथवा अकस्मात घटित किसी कारणवश जब स्थगन अनिवार्य हो गया हो।

2.21.1 इस संबंध में हम इलाहाबाद में हुए सम्मेलन की एक दिलचस्प चर्चा का उल्लेख करते हैं। इलाहाबाद उच्च न्यायालय में विगत अनेक वर्षों से एक यह अजीब प्रक्रिया चली आ रही है कि अपनी बीमारी के आधार पर स्थगन मांगने वाले काउंसेल को आवेदनपत्र भेजने की आवश्यकता नहीं होती है और न ही उसके द्वारा अथवा उसकी ओर से किसी अन्य काउंसिल द्वारा न्यायालय में अनुरोध किया जाना ही आवश्यक है। किया यह जा रहा है कि न्यायालय मास्टर/न्यायपीठ क्लर्क को बीमारी की पर्ची (इलनैस स्लिप) भेज दी जाती है इसके प्राप्त होने पर न्यायालय मास्टर/न्यायपीठ क्लर्क स्वमेव ही पीठासीन न्यायाधीश अथवा न्यायपीठ के न्यायाधीशों के ध्यान में लाए बिना ही, मामले का स्थगन कर देता है। दूसरे पक्ष के काउंसेल को भी सूचित नहीं किया जाता। निश्चित रूप से ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जहाँ एक एडवोकेट उच्च न्यायालय ने एक न्यायपीठ में ऐसी बीमारी की पर्ची भेज दी है और वह उसी दिन दूसरे न्यायालय में बहस करता हुआ अथवा उपस्थित पाया गया है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने इस अस्वास्थ्यकर प्रक्रिया को जिसका परिणाम अकसर न्याय प्रक्रिया के दुरुपयोग में होता है समाप्त करने का तर्क दिया है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय की बार के सदस्यों ने, जो सम्मेलन में भागीदार थे और उपस्थित थे, उक्त प्रक्रिया को न्यायोचित ठहराने का प्रयास किया यद्यपि उन्होंने यह स्वीकार किया था कि कुछ एडवोकेट इस प्रक्रिया का दुरुपयोग कर रहे हैं। आयोग का मत है कि इस कपटपूर्ण प्रक्रिया को समाप्त किया जाना चाहिए। यह प्रक्रिया बहुत पहले विगत काल में प्रारम्भ हुई। यह स्पष्ट नहीं है कि किन परिस्थितियों में तथा किन कारणों से यह आरम्भ हुई। तथापि, सच यह है कि न केवल यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो संहिता द्वारा स्वीकृत नहीं है यह न्यायालय के अनुशासन, गरिमा एवं शिष्टाचार के विपरीत चल रही प्रतीत होती है। बहुत देर हो चुकी है, अब यह बन्द होनी चाहिए। यह किसी अन्य उच्च न्यायालय में भी चल रही नहीं प्रतीत होती है।

2.21.2 उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि नियम 1 का प्रस्तावित उपनियम (1) वांछनीय और हितकारी है तथापि उपनियम में यह स्पष्ट दर्शाया जाना चाहिए कि इसमें अवधारित स्थगन का अर्थ किसी पक्ष के अनुरोध पर स्वीकृत अथवा स्वीकार किए जाने वाले

स्थगन से है न कि किसी अन्य कारण से किए गए स्थगन से। इसके अतिरिक्त यह भी बाध्यकारी बनाया जाना चाहिए कि पहले, दूसरे और तीसरे स्थगन में, जो पक्षकार को उसके अनुरोध पर उस दिन की सुनवाई के लिए किए गए वास्तविक खर्चे की पूरी राशि की क्षतिपूर्ति की जाए। वास्तव में यह पहलू नियम 1 के उपनियम (2) में इस आशय का एक परन्तुक और जोड़ा जाना चाहिए कि पक्षकार के मौखिक अनुरोध पर अथवा काऊंसिल द्वारा दी गई किसी पर्ची अथवा पत्र पर कोई स्थगन मंजूर नहीं किया जाएगा। स्थगन केवल पक्षकार द्वारा दिए गए लिखित आवेदन पर ही, जो पक्षकार के काऊंसिल द्वारा सत्यापित हो अथवा पक्षकार के शपथ पत्र द्वारा समर्थित, मंजूर किया जाएगा। ऐसा तभी होना चाहिए जब दूसरे पक्ष को इसमें कोई आपत्ति न हो। उस मामले में जहाँ स्थगन के लिए दोनों पक्षों द्वारा अनुरोध किया जाए वहाँ न्यायालय दोनों पक्षों पर खर्चे का भार डालेगा और इस प्रकार प्राप्त राशि को जिले अथवा राज्य के विधिक सहायता निकाय को, यथास्थिति, दे दिया जाएगा। संक्षेप में, उपनियम (1) में दो और परन्तुक जोड़े जाने चाहिए। विधि आयोग द्वारा प्रस्तावित दूसरे परन्तुक में यह उल्लेख होना चाहिए कि पक्षकार के काऊंसिल द्वारा सत्यापित और हस्ताक्षरित अथवा पक्षकार के शपथ-पत्र द्वारा समर्थित उसके लिखित आवेदन के अतिरिक्त, जिसकी प्रति पहले ही विरोधी पक्षकार के काऊंसिल को उपलब्ध करा दी गयी हो, कोई स्थगन मंजूर नहीं किया जाएगा। तीसरे परन्तुक में यह व्यवस्था होनी चाहिए कि उपनियम द्वारा अवधारित स्थगन पक्षकार के अनुरोध पर, किसी अन्य कारण से नहीं, मंजूर किया गया स्थगन है। तथापि, यह स्पष्ट है कि जहाँ बाद किसी अन्य कारण से भी स्थगित किया जाता है वहाँ न्यायालय को प्रस्तावित उपनियम (1) की अपेक्षानुसार ऐसे स्थगन के विशेष कारण अभिलिखित करने होंगे।

(ii) उपर्युक्त चर्चा की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि उपनियम (2) में प्रस्तावित संशोधन स्वागत योग्य कदम है और आयोग इससे सहमत है।

2.22 संशोधन विधेयक का खण्ड 27 : (1) आदेश 18 के नियम 2 के उपनियम (4) को निकालने का प्रस्ताव उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है। आयोग का विश्वास है कि इसका प्रस्ताव नए नियम 4 में प्रस्तावित साक्ष्य को लेखबद्ध करने के स्वरूप में मूलभूत परिवर्तन करने की दृष्टि से किया गया है। जैसा भी हो, और यदि नए नियम 4 को (जो न्यायालय को लेखबद्ध कारणों से जो किसी पक्षकार की किन्ही भी साक्ष्यों की किसी भी स्तर पर परीक्षा करने के लिए निदेश अथवा अनुमति देने की शक्ति प्रदान करता हो) निकालने का कोई कारण नहीं है। यह उपनियम सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1976 में ठोस कारणों से विशिष्ट रूप में रखा गया था और इसे अब निकालने का कोई कारण नहीं है।

(ii) वर्तमान नियम 4 के स्थान पर नए नियम को प्रतिस्थापित करने का प्रस्ताव है। उक्त नियम यह कहता है कि "उपस्थित साक्षियों का साक्ष्य खुले न्यायालय में न्यायाधीश की उपस्थिति में और उसके व्यैक्तिक निदेशन एवं अधीक्षण में मौखिक रूप से लिया जाएगा" जबकि प्रस्तावित नियम में यह उपबंधित है कि (क) प्रत्येक मामले में किसी साक्षी का उसकी मुख्य परीक्षा का साक्ष्य शपथ-पत्र द्वारा दिया जायेगा और उसकी प्रतियों को उस के विरोधी पक्षकार को प्रदाय किया जाएगा जो साक्ष्य के लिए ऐसे बुलाता है। (ख) प्रतिपरीक्षा और पुनः परीक्षा न्यायालय द्वारा नियुक्त कमिश्नर के समक्ष की जायेगी; (ग) तथापि, लेखबद्ध कारणों से किसी साक्षी का साक्ष्य न्यायालय द्वारा न्यायाधीश की उपस्थिति में और उसके वैयक्तिक निदेशन तथा अधीक्षण के अधीन लेने की शक्ति न्यायालय में ही निहित रखी गई है; (घ) परीक्षा के लिए बुलाए जाने पर खर्च की गई राशि न्यायालय द्वारा अथवा साक्षियों को बुलाने वाले पक्षकार द्वारा, जैसा भी उच्च न्यायालय द्वारा विहित किया जाए, संदत्त होगी; और (ङ) जहाँ साक्षी से पूछे गए प्रश्न पर दूसरे पक्ष द्वारा आपत्ति की जाए, कमिश्नर उस प्रश्न को पूछने की अनुमति दे सकेगा परन्तु वह अपने निर्णय में उस प्रश्न का भी उल्लेख करेगा।

2.22.1 साक्षियों की परीक्षा की यह नई पद्धति सम्मेलन में काफी विवादास्पद रही है। जहाँ बार के सदस्यों ने इसका एकमत से विरोध किया, न्यायपीठ के कुछ सदस्यों ने इसका समर्थन किया। न्यायपीठ के जिन सदस्यों ने इस नए प्रस्ताव का समर्थन किया उनका विचार था कि इस पद्धति से न्यायालयों को मामलों का शीघ्र निपटारा करने में बहुत सहायता मिलेगी। वास्तव में, यह सत्य हमारे ध्यान में लाया गया कि बहुत से न्यायालयों में एक विलक्षण पद्धति अपनाई जा रही है जिसके अन्तर्गत जहाँ न्यायाधीश एक वाद में बहस सुन रहा होता है, वहीं साथ साथ न्यायालय के एक कोने में एक अन्य वाद में साथियों की परीक्षा चल रही होती है। वास्तव में हमें बताया गया कि कभी कभी दो भिन्न-भिन्न वादों में न्यायालय के दो कोनों में साथियों की परीक्षा चल रही होती है जबकि न्यायाधीश एक तीसरे मामले की बहस सुन रहा होता है। जब कभी उन वादों में कोई आपत्ति या विवाद उठता है, न्यायधीश तर्क सुनना बन्द कर देता है, आपत्तियाँ सुनता है और उनको निपटाने के पश्चात फिर से तीसरे मामले की बहस सुनने लगता है। हमें बताया गया कि ऐसा इसलिए किया जाता है कि न्यायाधीश उच्च न्यायालयों द्वारा निर्धारित मामलों को निपटाने का अपना कोटा पूरा कर सके। कुछ भी हो, हम प्रस्तावित नियम 4 में सुझायी गई नई पद्धति के बारे में की गयी आपत्तियों पर विचार करेंगे।

2.22.2 जहाँ तक शपथ-पत्र द्वारा साक्षी के साक्ष्य की मुख्य परीक्षा का संबंध है, आपत्ति यह उठाई गई कि इस रूप में दिया गया साक्ष्य न केवल न्यायालय में नहीं दिया गया साक्ष्य होगा-न्यायालय द्वारा नियुक्त कमिश्नर के समक्ष दिया गया साक्ष्य भी नहीं होगा अपितु एक एडवोकेट के सम्मुख दिया गया साक्ष्य होगा। यह भी बताया गया कि अक्सर साक्षियों के मुख से ऐसे शब्द कहलवा दिए जाते है जो उन्होने नहीं कहे होते हैं। यह आग्रह किया गया कि यह पक्षकार के एडवोकेट का साक्ष्य होगा न कि साक्षी का। इस संबंध में एक अन्य आपत्ति यह की गई कि यदि साक्षी की मुख्य परीक्षा शपथ पत्र के माध्यम से पूरी की जाने की अनुमति दी गई तो साक्ष्य अधिनियम का यह समादेश कि साक्ष्य की मुख्य परीक्षा में मुख्य प्रश्न नहीं पूछे जाएंगे, पालन और क्रियान्वयन नहीं होगा। यह आग्रह भी किया गया कि साक्षी की मुख्य परीक्षा के दौरान अक्सर बहुत से दस्तावेज चिन्हांकित

किए जाते हैं और यदि उस समय कोई आपत्ति नहीं उठाई जाती है और दस्तावेज चिन्हांकित कर दिया जाता है तो विरोधी पक्ष को बाद में आपत्ति करने से रोका जाएगा। अपर्याप्त रूप से चिन्हांकित अथवा बिना स्टाम्प के दस्तावेजों का उदाहरण दिया गया तथा स्टाम्प अधिनियम की धारा 36 के वर्जन पर निर्भर किया गया।

2.22.3 जहां तक कमीशन पर प्रतिपरीक्षा और पुनःपरीक्षा का संबंध है, बहुत-सी आपत्तियां उठाई गईं। यह कहा गया कि यदि साक्ष्य कमिश्नर के कार्यालय में अथवा अन्यत्र अभिलिखित किया गया तो इससे न्यायालय की सत्यनिष्ठा एवं पवित्रता नहीं रह पाएगी। यह कहा गया नियम 4 का उपनियम 7, जैसा कि प्रस्तावित है, में जहां किसी प्रश्न पर किसी पक्षकार द्वारा आपत्ति उठाई जाए और कमिश्नर उस प्रश्न को पूछने की अनुमति दे दे वहां केवल यह व्यवस्था है कि कमिश्नर अपने विनिश्चय के साथ उस प्रश्न को भी लिखेगा। नियम में यह व्यवस्था नहीं है कि यदि कमिश्नर आपत्ति को सही ठहराता है और प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं देता तब क्या होगा। एक प्रश्न मामले के व्यावहारिक पहलू के बारे में भी उठाया गया। यह कहा गया कि जब कमिश्नर पर किसी साक्षी की परीक्षा की जाए तो न्यायालय का क्लर्क उस अभिलेख को एडवोकेट के कार्यालय में अथवा अन्य किसी स्थान पर, जैसा भी स्थिति हो, जहां साक्षी का साक्ष्य अभिलिखित किया जा रहा है, ले जाएगा। यह भी बताया गया कि अभिलेख कमिश्नर को नहीं, न्यायालय अधिकारी की संरक्षा में रखना अनिवार्य है। आगे यह भी बताया गया कि यदि कमिशन पर साक्ष्य का अभिलिखित करना एक सामान्य प्रक्रिया बन गई, तो बहुत से वाद साथ-साथ खुल जाएंगे जहां साक्ष्य अभिलिखित किया जा रहा हो और फाइलें ले जाने के लिए और विभिन्न कमिश्नरों द्वारा साक्ष्य के अभिलिखित किए जाते समय उपस्थित रहने के लिए पर्याप्त संख्या में क्लर्क भी उपलब्ध नहीं होंगे। सम्मेलन में भाग लेने वाले कुछ सदस्यों ने बताया कि कमिश्नर सामान्यतया अपना कार्य शीघ्रता से पूरा नहीं करते, आराम से कार्य करते हैं, और अक्सर महंगे होटलों में दोपहर के भोजन आदि की सुविधाएं तथा अन्य प्रकीर्ण खर्चे मांगते हैं। यह भी बताया गया कि बहुत से पक्षकार उक्त खर्चों को वहन करने की स्थिति में नहीं होते। कुछ सदस्यों ने यह आपत्ति उठाई कि केवल न्यायालयों में साक्षियों की परीक्षा से न्यायालय न केवल साक्षी के आचरण पर ध्यान देता है अपितु साक्षी के साक्ष्य की सत्यता और विश्वसनीयता के विषय में भी अपनी धारणा बनाता है। उन्होंने बताया कि कमिशन पर साक्ष्य अभिलिखित करने से इन पहलूओं का अभाव रहेगा।

2.22.4 दूसरी ओर, न्यायपालिका के कतिपय सदस्यों ने यह बताया कि आचरण और उसके कारण साक्षी की विश्वसनीयता और सत्यता का न्यायालय द्वारा मूल्यांकन किए जाने का कोई वास्तविक महत्व नहीं रह गया है क्योंकि न्यायालयों द्वारा प्रत्येक सप्ताह, प्रत्येक माह बहुत बड़ी संख्या में वादों की सुनवाई की जाती है और बहुत बड़ी संख्या में साक्षियों की परीक्षा की जाती है। यह भी बताया कि जब तक न्यायालय द्वारा साक्षी की परीक्षा के दौरान उसके आचरण को अभिलिखित नहीं किया जाता, वाद पर निर्णय देते समय न्यायालय उस पर निर्भर नहीं कर सकता। यह भी बताया गया कि अमरीका जैसे देशों में संपूर्ण साक्ष्य कमिश्नर के सामने भी नहीं अपितु उस पक्षकार के जिसके साक्षी की परीक्षा की जा रही है, अटार्नी के कार्यालय में अभिलिखित किया जाता है। बताया गया है कि उक्त प्रणाली सफलतापूर्वक चल रही है। यह सुझाव भी दिया गया कि भारी कार्यभार के कारण, पीठासीन अधिकारी दिन के आरम्भिक घंटे प्रकीर्ण मामलों को निपटाने में लगाते हैं और यह कि यदि साक्ष्य स्वयं न्यायाधीशों द्वारा ही अभिलिखित किया जाए, तो बहस सुनने, अध्ययन करने, परिवर्तन तथा निर्णय तैयार करने के लिए अधिक समय नहीं बचेगा। इस दृष्टिकोण से, यह आग्रह किया गया, प्रस्तावित नियम 4 अत्यन्त उपयुक्त ठहरता है। यह भी कहा गया कि साक्ष्य की मुख्य परीक्षा शपथ-पत्र द्वारा नहीं, कमिश्नर के सम्मुख अभिलिखित की जानी चाहिए।

2.22.5 सभी दृष्टिकोणों पर विचार करने के पश्चात्, विधि आयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि नियम निम्नलिखित रूप में पुनः प्रारूपित किया जाना चाहिए :—

(क) सभी वादों में, जहां विषयवस्तु का मूल्य 5,00,000/- रुपये से अधिक हो, वहाँ मुख्य परीक्षा, प्रतिपरीक्षा, और पुनः परीक्षा न्यायालय द्वारा नियुक्त किए गए कमिश्नर के सम्मुख की जाएगी। केवल उन मामलों को छोड़कर जिनमें न्यायालय, लेखबद्ध कारणों से, यह समझता है कि साक्षियों की अथवा उनमें से कुछ की, जो न्यायालय निर्दिष्ट करे, परीक्षा न्यायालय में की जाएगी।

(ख) किसी शहर या नगर में प्रत्येक प्रमुख सिविल न्यायालय का पीठासीन न्यायाधीश सेवानिवृत्त न्यायाधीशों तथा अन्य वरिष्ठ अधिवक्ताओं से जो इस कार्य के लिए तत्पर हों, कमिश्नर की एक सूची तैयार करेगा। यह उपयुक्त होगा यदि न्यायालय ऐसे कमिश्नरों का पारिश्रमिक भी विनिर्दिष्ट करे। यह पारिश्रमिक घंटों के आधार पर निश्चित किया जा सकता है।

(ग) कमीशन के खर्च उस पक्षकार द्वारा वहन किए जाएंगे जिसके साक्षी की परीक्षा की जा रही हो। साधारणतया, साक्ष्य कमिश्नर के कार्यालय में (यदि वह एडवोकेट है) अथवा किसी ऐसे स्थान पर जिससे पक्षकार तथा कमिश्नर सहमत हों, अभिलिखित किया जाएगा। इस विषय में भी विचार किया जा सकता है कि क्या यह सुविधाजनक नहीं रहेगा यदि साक्ष्य न्यायालय प्रांगण में, जहां कहीं उपलब्ध हो, अभिलिखित किया जाए। यह भी उपयुक्त होगा यदि कमिश्नर इस कार्य को न्यायालय कार्य के समय के पश्चात् या छुट्टी के दिन करे।

(घ) ऐसे वादों में भी जहां मूल्य 5,00,000/- रुपये की राशि से कम है, साक्षियों की परीक्षा कमीशन पर की जा सकती है, यदि पक्षकार सहमत है और न्यायालय ने ऐसा आदेश दिया हो।

(ङ) शपथ-पत्र के रूप में किसी साक्षी के साक्ष्य की मुख्य परीक्षा के प्रस्ताव को छोड़ दिया जाना चाहिए।

(च) जहां साक्षी से पूछे गए किसी प्रश्न पर पक्षकार अथवा उसके अधिवक्ता द्वारा आपत्ति उठाई जाती है और कमिश्नर उसकी अनुमति नहीं देता है वहां कमिश्नर प्रश्न, आपत्ति तथा उस पर अपने निर्णय को लेखबद्ध करेगा। जहाँ वह आपत्ति के होते हुए भी प्रश्न की अनुमति दे देता है, ऐसे मामले में भी, कमिश्नर, प्रश्न, आपत्ति और उस पर अपने निर्णय तथा इस बारे में साक्षी द्वारा दिए गए उत्तर को भी लेखबद्ध करेगा।

(iii) नियम 17-क को जो वास्तव में 1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया था, निकालने के प्रस्ताव का सम्मेलन में सभी सदस्यों ने दृढ़मत से विरोध किया। विधि आयोग का भी यह मत है कि इस नियम को, जो 1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा काफी विचार-विमर्श के पश्चात् सम्मिलित किया गया था, निकालने का कोई उचित कारण नहीं है। अत: उपनियम को निकालने के प्रस्ताव को छोड़ दिया जाना चाहिए।

2.23 **संशोधन विधेयक का खण्ड 28** :—आदेश 20 में सुझाए गये बहुत से संशोधन पारदर्शिता तथा शीघ्रता की चिन्ता से उत्प्रेरित हैं। हम इनमें से प्रत्येक संशोधन पर पृथक रूप में विचार करेंगे।

(I) आदेश 20 के नियम 1 के उपनियम (2) की शब्दावली, "परन्तु सम्पूर्ण निर्णय की एक प्रति, निर्णय सुनाए जाने के पश्चात्, पक्षकारों के परिशीलन के लिए उपलब्ध कराई जाए" को प्रस्तावित नियम 6-ख को ध्यान में रखते हुए निकालने का प्रस्ताव है। नियम 6-ख में कहा गया है कि जहां निर्णय सुना दिया जाता है (स्पष्ट है जिसका अर्थ है तैयार निर्णय सुना दिया जाता है) वहां निर्णय की प्रतियाँ पक्षकारों को निर्णय के सुनाए जाने के ठीक पश्चात् अपील करने के लिए उपयुक्त प्रभारों के संदाय पर उपलब्ध कराई जाएँगी। इस दृष्टि से नियम 1 के उपनियम (2) की उपर्युक्त शब्दावली को निकालना आपत्तिजनक नहीं है। परन्तु न्यायपालिका के कुछ सदस्यों ने यह सुझाव दिया था कि निर्णय सुनाए जाने के ठीक पश्चात् उसकी प्रतियां उपलब्ध कराना कुछ व्यावहारिक कारणों से कठिन है और यह कि अपेक्षा निर्णय की प्रतियां तीन दिन के भीतर उपलब्ध कराने की होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में नियम 6-ख में आए "तुरन्त पश्चात्" शब्दों के स्थान पर "के तीन दिन के भीतर" शब्द प्रतिस्थापित किए जाने चाहिए। यह भी कहा गया कि बहुत से शहरों तथा नगरों में "जीरोक्स" या "फोटोकापी" करने की सुविधा तत्काल उपलब्ध नहीं होती है और यदि उपलब्ध होती भी तो भी निर्णय सुनाए जाने के तुरन्त पश्चात् उसकी फोटोकापी करने तथा इन्हें उपलब्ध कराने में भी व्यावहारिक कठिनाईयां हैं। यह प्रस्ताव न्यायिक अधिकारियों के अनुभव पर आधारित प्रतीत होता है और हमारे विचार से इसका सम्मान और कार्यान्वयन किया जाना चाहिए। यदि आवश्यक हुआ, तो इस मामले की बाद में पुनरीक्षा की जा सकती है। बहुत बार, आदेश/निर्णय न्यायालयों में ही बोलकर लिखाये जाते हैं। ऐसे मामलों में, नियम 6-ख की अपेक्षाओं को पूरा करना संभव नहीं है। अत: प्रस्तावित नियम 6-ख के साथ यह दर्शाने के लिए एक स्पष्टीकरण आवश्यक है कि इस नियम की अपेक्षाएं आदेश/निर्णय की नकल किए जाने, शुद्धि किए जाने तथा उस पर हस्ताक्षर किए जाने के पश्चात् ही, उन मामलों में जहां आदेश/निर्णय न्यायालय में ही बोलकर लिखवाए जाते हैं, लागू होंगी।

(II) प्रस्तावित नियम 6-क के प्रावधान अनापत्ति योग्य हैं। तथापि, नियम 6-क के उपनियम (2) इस आशय का एक परन्तुक जोड़कर स्पष्ट किया जाना चाहिए कि निर्णय पर आधारित इस आधार पर, कि डिक्री का प्रारूप तैयार नहीं किया गया है अथवा डिक्री उपलब्ध नहीं कराई गई है, की गई किसी अपील को दोषपूर्ण नहीं माना जाएगा बशर्ते कि डिक्री की प्रति उसके तैयार होने के पश्चात् न्यायोचित समय सीमा में प्रस्तुत कर दी जाए।

2.24 **संशोधन विधेयक का खण्ड 30** :—आदेश 39 के नियम के उपनियम (2) में प्रस्तावित परिवर्धन काफी विवादास्पद रहा है। विशेषकर, बार के सदस्यों ने यह महसूस किया कि अस्थायी रोकादेश मंजूर करने के लिए पूर्वशर्त के रूप में प्रतिभूति की आवश्यकता से अकिंचन एवं निर्धन वादी के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा जैसे कि कोई विधवा अपने भरणपोषण के लिए दावा करती है और अपने पति द्वारा संपत्तियों के अन्य संक्रामण अस्थायी रोकादेश की मांग करती है, अकिंचन प्ररूप में तथा एक अच्छे वाद हेतुक से वाद लाने वाले वादियों, लोक न्यूसेंस तथा सार्वजनिक पूर्त कार्यों के संबंध में वादों में अन्तर्ग्रस्त वादियों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। दूसरी ओर सम्मेलन में भाग लेने वाले थोड़े से सदस्यों ने प्रस्तावित उपनियम का इस आधार पर समर्थन किया कि चालाकी से अथवा आकस्मिक रूप में अस्थायी रोकादेश मांगने वालों को हतोत्साहित करने में सहायता मिलेगी।

2.24.1 उक्त उपनियम पर आपत्ति करने वालों ने प्रत्यक्षत: प्रस्तावित उपनियम (2) में प्रयुक्त शब्दावली पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। नियम की यह अपेक्षा कि न्यायालय उपनियम में उल्लिखित स्वरूप का अस्थायी रोकादेश मंजूर करते समय "वादी को प्रतिभूति, अथवा अन्यथा जो वह उचित समझे, देने का निदेश देगा"। हमारे विचार में उपनियम में एक हितकारी सिद्धान्त अन्तर्निहित है। तथापि, मामले को और अधिक स्पष्ट करने के लिए, यह उपयुक्त होगा यदि "अथवा अन्यथा" शब्दों के स्थान पर "अथवा ऐसे अन्य निदेश देगा" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएँ। इस आशय का एक परन्तुक भी जोड़ा जा सकता है कि अस्थायी रोकादेश मंजूर करने के लिए शर्त के रूप में प्रतिभूति देने अथवा अन्य उपयुक्त निदेश देने की उक्त आवश्यकता उपयुक्त मामलों में न्यायालय द्वारा लेखबद्ध किए जाने वाले विशेष कारणों से अभिमुक्ति दी जा सकती है।

2.25 **संशोधन विधेयक का खण्ड 31** :—प्रस्तावित आदेश 39 के नियम 1 तथा 2 उक्त उपबंध में निहित आशय को पूरा अथवा कार्यान्वित नहीं करते हैं। उद्देश्यों और कारणों के कथन का पैरा 3(ज) इस प्रकार है :—

"सम्पत्ति के विवादों विशेषकर किसी अन्य की भूमि पर अप्राधिकृत निर्माण से संबंधित मामलों में यह पाया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के विद्यमान् उपबंधों के अधीन व्यादेश के लिए कोई आवेदन केवल तभी किया जा सकता है जब सक्षम अधिकारिता रखने

वाले न्यायालय में पहले वाद फाइल कर दिया गया हो। इस कठिनाई को दूर करने की दृष्टि से यह प्रस्ताव दिया जाता है कि वह व्यक्ति सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय में सम्पत्ति की वास्तविक स्थिति सुनिश्चित करने के लिए आयुक्त की नियुक्ति के लिए आवेदन करे जिससे नियमित वाद फाईल करने के समय विवादग्रस्त सम्पत्ति की वास्तविक स्थिति के संबंध में रिपोर्ट कमिश्नर को उपलब्ध हो,"

तथापि, नियम 1 तथा 2 की भाषा से उक्त आशय पूरा नहीं होता है और इस कारण से नियमों की निदेशों के अभाव तथा अस्पष्ट होने के लिए आलोचना की गई है। इन नियमों का पुनर्प्रारूपण किया जाना चाहिए ताकि इनमें आशय स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो सके और ये उद्देश्यों और कारणों के कथन के अनुरूप हो सकें।

2.26 **संशोधन विधेयक का खण्ड 32** :—आदेश 41 के प्रस्तावित संशोधन का बार तथा न्यायपीठ दोनों के सदस्यों ने एकमत से विरोध किया है। इस आदेश में प्रस्तावित संशोधन के पीछे मुख्य विचार ऐसी व्यवस्था करना है कि जिस न्यायालय ने अपील किए जाने के लिए डिक्री पारित की है उस न्यायालय में अपील की जा सकेगी और वह न्यायालय उसे अपील न्यायालय को भेजेगा। यह भी बताया गया था कि पक्षकार अक्सर रोकादेश, व्यादेश और अपील के साथ प्रस्तुत किए गए अंतर्वर्ती आवेदन पर अन्य उपयुक्त निदेशों के रूप में अंतरिम आदेशों की मांग करते हैं और यह कि यदि अपील डिक्री पारित करने वाले न्यायालय में ही की जाती है तो वह न्यायालय अपनी पारित डिक्री के विरुद्ध ऐसे आदेश नहीं देगा। यह भी बताया गया था कि साधारणतया पक्षकार अपील न्यायालय के वकील से परामर्श करते हैं अक्सर जो दूसरे शहर या नगर में होते हैं और अपील दायर करने के बारे में उसके विचार जानने का प्रयास करते हैं। यह देखा गया है कि जहाँ वह वकील जिसका मुवक्किल मामले में पराजित हुआ है वह अपने मुवक्किल को अपील दायर करने पर जोर देता है, अपील न्यायालय का वकील का दृष्टिकोण दूसरा हो सकता है। इससे तथा अन्य व्यवहारिक कारणों से (अर्थात् प्रत्येक न्यायालय में, अपील न्यायालय के अपील रजिस्टर के अतिरिक्त, पृथक अपील रजिस्टर रखना) यह सुझाव दिया गया कि प्रस्ताव छोड़ दिया जाए।

2.26.1 सम्मेलन के भागीदारों/प्रत्यर्थियों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों पर विचार करने के पश्चात्, विधि आयोग का यह मत है कि अब जिस उपाय का सुझाव दिया गया है वह उत्साहविहीन है। या तो पुरानी पद्धति जारी रहनी चाहिए और यदि विचार यह है कि विचारण न्यायालय में अपील दायर करने की सुविधा हो (अथवा जिस न्यायालय ने डिक्री के विरुद्ध अपील करने के लिए डिक्री पारित की है, जैसी भी स्थिति हो) तो यह व्यवस्था भी की जानी चाहिए कि अपील दायर करते समय, अपीलार्थी अंतर्वर्ती आवेदनों के साथ, यदि कोई हों, अपील की प्रतियां उस न्यायालय में दूसरे पक्षकार के काउंसिल को तामील करायेगा और इस प्रकार की तामील दूसरे पक्षकार के लिए पर्याप्त समझी जाएगी। लेटर्स पेटेंट्स अपील दायर करने के मामले में सिविल मामलों में या रिट याचिकाओं में, ऐसी प्रक्रिया उच्च न्यायालयों में प्रचलित है। इस प्रयोजन से उपयुक्त नियमों के अनुसार निर्धारित वकालतनामे के फार्म में इस आशय का संशोधन करना होगा कि डिक्री पारित होने के बाद भी यदि दूसरे पक्ष द्वारा आवेदनों के साथ अपील की प्रतियाँ उन्हें तामील कराई जाती हैं तो उन्हें प्राप्त करने के लिए एडवोकेट बाध्यकारी होंगे। न्यायालय को, जिसकी डिक्री के विरुद्ध अपील की जा रही है, एक सीमित अवधि के लिए, जिसके भीतर अपील संबंधी कागजात उपयुक्त अपीलीय न्यायालय को भेजे जा सकें और अपीलीय न्यायालय उन पर कार्यवाही कर सके, उपयुक्त अन्तरिम आदेश पारित करने की स्पष्ट रूप में शक्ति प्राप्त होनी चाहिए। इस सुझाव में, अपील में फिर से सम्मन भेजने की आवश्यकता, जिसमें लम्बा समय लगता है, के गुणागुण विद्यमान् हैं। अनुभव से ज्ञात है कि बहुत से मामलों में अपील में प्रत्यर्थियों को तामील करने में वर्षों लग जाते हैं जिससे अपीलों के निपटान में भी विलम्ब होता है। इस सबसे तभी बचा जा सकता है जब प्रत्यर्थी के एडवोकेट को तामील करना (अपील में) पक्षकार को तामील करने के लिए पर्याप्त समझा जाए। तब विचारण न्यायालय ऐसी तिथि निर्धारित कर सकता है जिसके दोनों पक्षकार अपील न्यायालय में उपस्थिति हों और जहाँ से मामले की सुनवाई अपील न्यायालय द्वारा की जाए। परन्तु इस समय प्रस्तावित प्रावधान में केवल विचारण न्यायालय में, अथवा उस न्यायालय में जिसकी डिक्री के विरुद्ध अपील की जा रही है, यथास्थिति, अपील दायर करने की व्यवस्था है इससे अधिक कुछ नहीं। विधि आयोग के मतानुसार प्रस्तावित उपाय के निष्प्रभावी होने की संभावना है। उपर्युक्त विचारों को ध्यान में रखते हुए संशोधनों पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।

2.27 सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1997 में सुझाए गए अन्य संशोधनों के बारे में विधि आयोग को कोई आपत्ति नहीं है।

ह०
(न्यायमूर्ति श्री बी०पी०जीवन रेड्डी) (सेवानिवृत्त)
चेयरमैन

ह०
(न्यायमूर्ति श्रीमती लीला सेठ) (सेवानिवृत्त)
सदस्य

ह०
(डा० एन० एम० घटाटे)
सदस्य

ह०
(डा० सुभाष सी० जैन)
सदस्य सचिव

दिनांक : 13 नवम्बर, 1998

अनुबंध-क

राज्य सभा में पुर:स्थापित रूप में
1997 का विधेयक संख्यांक 50

[दि कोड ऑफ सिविल प्रोसीजर (अमेंडमेंट) बिल, 1997 का हिंदी अनुवाद]

सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन)

विधेयक, 1997

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908, परिसीमा अधिनियम, 1963

और न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 का और

संशोधन करने के लिए विधेयक

भारत गणराज्य के अड़तालीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :—

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. **संक्षिप्त नाम और प्रारंभ**—(1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1997 है।

(2) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे और इस अधिनियम के भिन्न-भिन्न उपबंधों के लिए और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए या उनके भिन्न-भिन्न भागों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी।

अध्याय 2

धाराओं का संशोधन

2. **धारा 26 का संशोधन**—सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे इसमें इसके पश्चात् मूल अधिनियम कहा गया है) की विद्यमान् धारा 26 को उपधारा (1) के रूप में पुन: संख्यांकित किया जाएगा और उपधारा (1) को इस प्रकार पुन:संख्यांकित किए जाने के पश्चात् निम्नलिखित उपधारा अंत:स्थापित की जाएगी, अर्थात् :—

"(2) प्रत्येक वादपत्र में तथ्य शपथपत्र द्वारा साबित किए जायेंगे।"

3. **धारा 27 का संशोधन**—मूल अधिनियम की धारा 27 में, "और उसकी तामील विहित रीति से की जा सकेगी" शब्दों के पश्चात् और उसकी तामील ऐसे दिन को जो वाद के संस्थापन की तारीख से तीस दिन से बाद का न हो विहित रीति से की जा सकेगी" शब्द अंत:स्थापित किए जाएंगे।

4. **धारा 32 का संशोधन**—मूल अधिनियम की धारा 32 के खंड (ग) में "पांच सौ रुपए से **अधिक**" शब्दों के स्थान पर "पांच हजार रुपए से अनधिक" शब्द रखे जाएंगे।

5. **धारा 58 का संशोधन**—मूल अधिनियम की धारा 58 में,—

(I) उपधारा (1) में,—

(क) खंड (क) में "एक हजार रुपए" शब्दों के स्थान पर "पांच हजार रुपए" शब्द रखे जाएंगे;

(ख) खंड (ख) के स्थान पर, निम्नलिखित खंड रखा जाएगा,

"(ख) जहां डिक्री दो हजार रुपए से अधिक किन्तु पांच हजार रुपए से अनधिक धनराशि का संदाय करने के लिए है वहां छह सप्ताह से अनधिक अवधि के लिए";

(II) उपधारा (1क) में "पांच सौ रुपए" शब्दों के स्थान पर "दो हजार रुपए" शब्द रखे जाएंगे।

6. **धारा 60 का संशोधन**—मूल अधिनियम की धारा 60 की उपधारा (1) के पहले परन्तुक के खंड (i) में "चार सौ रुपए" शब्दों के स्थान पर "एक हजार रुपए" शब्द रखे जाएंगे।

7. **नई धारा 89 का अंत:स्थापन**—मूल अधिनियम की धारा 88 के पश्चात् निम्नलिखित धारा अंत:स्थापित की जाएगी, अर्थात् :—

"89. **न्यायालय के बाहर विवादों का निपटारा**—(1) जहां न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि किसी ऐसे समझौते के तत्व विद्यमान् हैं, जो दोनों पक्षकारों को स्वीकार्य हो सकता है वहां न्यायालय समझौते के निबंधन बनाएगा और उन्हें पक्षकारों को उनकी टीका-टिप्पणी के लिए देगा और पक्षकारों की टीका-टिप्पणी प्राप्त करने के पश्चात् न्यायालय संभव समझौते के निबंधन पुन: तैयार कर सकेगा और उन्हें—

(क) माध्यस्थम;

(ख) सुलह;

(ग) न्यायिक समझौते जिसके अंतर्गत लोक अदालत के माध्यम से समझौते भी हैं; या

(घ) बिचाव

के लिए निर्दिष्ट करेगा।

(2) जहां कोई विवाद—

(क) **1986 का 26**—माध्यस्थम या सुलह के लिए निर्दिष्ट किया गया है वहां माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1986 के उपबंध ऐसे लागू होंगे मानो माध्यस्थम सुलह के लिए कार्यवाहियां उस अधिनियम के उपबंधों के अधीन समझौते के लिए निर्दिष्ट की गई थीं;

(ख) **1987 का 39**—लोक अदालत को निर्दिष्ट किया गया है वहां न्यायालय उसे विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 20 की उपधारा (1) के उपबंधों के अनुसार लोक अदालत को निर्दिष्ट करेगा और उस अधिनियम के सभी अन्य उपबंध लोक अदालतों को इस प्रकार निर्दिष्ट किए गए विवाद के संबंध में लागू होंगे;

(ग) **1987 का 39**—न्यायिक समझौते के लिए निर्दिष्ट किया गया है, वहां न्यायालय उसे किसी उपयुक्त संस्था या व्यक्ति को निर्दिष्ट करेगा और ऐसी संस्था या व्यक्ति लोक अदालत समझा जाएगा तथा विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के सभी उपबंध ऐसे लागू होंगे मानो वह विवाद लोक अदालत को उस अधिनियम के उपबंधों के अधीन निर्दिष्ट किया गया था;

(घ) बीच-बचाव के लिए निर्दिष्ट किया गया है, वहां न्यायालय पक्षकारों के बीच समझौता कराएगा और ऐसी प्रक्रिया का पालन करेगा जो विहित की जाए"।

8. **धारा 95 का संशोधन**—मूल अधिनियम की धारा 95 की उपधारा (1) में "एक हजार रुपए से अनधिक" शब्दों के स्थान पर "पांच हजार रुपये से अनधिक" शब्द रखे जाएंगे।

9. **धारा 96 का संशोधन**—मूल अधिनियम की धारा 96 की उपधारा (4) में "तीन हजार रुपए" शब्दों के स्थान पर "पच्चीस हजार रुपए" शब्द रखे जाएंगे।

10. **धारा 100क के स्थान पर नई धारा का प्रतिस्थापन**—मूल अधिनियम की धारा 100क के स्थान पर, निम्नलिखत धारा रखी जाएगी, अर्थात् :—

"100क. **कतिपय मामलों में आगे अपील का न होना**—किसी उच्च न्यायालय के लिए किसी लेटर्स पेटेंट में या विधि का बल रखने वाली किसी अन्य लिखत में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी उच्च न्यायालय के किसी एकल न्यायधीश द्वारा,—

(क) किसी मूल या अपीली डिक्री या आदेश के किसी अपील की सुनवाई और उसका विनिश्चय किया गया है;

(ख) कोई रिट, निदेश या आदेश संविधान के अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 227 के अधीन किसी आवेदन में जारी किया गया है या किया गया है,

वहां ऐसे एकल न्यायधीश के निर्णय, विनिश्चय या आदेश से कोई और अपील नहीं होगी।

61 LJ&CA/2000—4

11. **धारा 102 के स्थान पर नई धारा का प्रतिस्थापन**—मूल अधिनियम, की धारा 102 के स्थान पर निम्नलिखित धारा रखी जाएगी, अर्थात् :—

"102. **कतिपय मामलों में द्वितीय अपील का न होना**—कोई द्वितीय अपील किसी डिक्री से नहीं होगी जब मूल वाद की विषयवस्तु की रकम या मूल्य पच्चीस हजार रुपए से अधिक नहीं है।"।

12. **धारा 115 का संशोधन**—मूल अधिनियम की धारा 115 की उपधारा (1) में,—

(i) परन्तुक के स्थान पर निम्नलिखित परन्तुक रखा जाएगा, अर्थात् :—

"परन्तु उच्च न्यायालय, किसी वाद या अन्य कार्यवाही के अनुक्रम में इस धारा के अधीन किए गए किसी आदेश में या कोई विवाद्यक विनिश्चित करने वाले किसी आदेश में तभी फेरफार करेगा या उसे उलटेगा जब ऐसा आदेश यदि वह पुनरीक्षण के लिए आवेदन करने वाले पक्षकार के पक्ष में किया गया होता तो वाद या अन्य कार्यवाही का अंतिम रूप से निपटारा कर देता।";

(ii) उपधारा (2) के पश्चात् किन्तु स्पष्टीकरण के पूर्व निम्नलिखित उपधारा अंत:स्थापित की जाएगी, अर्थात् :—

"(3) कोई पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष वाद या अन्य कार्यवाही की रोक के रूप में प्रवर्तित नहीं होगा सिवाय वहां के जहां ऐसे वाद या अन्य कार्यवाही को उच्च न्यायालय द्वारा रोका गया है।"।

13. **धारा 148 का संशोधन**—मूल अधिनियम की धारा 148 में "ऐसे वाद को" शब्दों के पश्चात्, " जो कुल मिलाकर तीस दिन से अधिक न हो," शब्द अंत:स्थापित किए जाएंगे।

अध्याय 3

आदेशों के संशोधन

14. **आदेश 4 का संशोधन**—मूल अधिनियम की पहली अनुसूची में (जिसे इसके पश्चात् पहली अनुसूची कहा गया है), आदेश 4 के नियम 1 में,—

(i) उप नियम (1) में "वादपत्र उपस्थित करके" शब्दों के स्थान पर "दो प्रतियों में वादपत्र उपस्थित करके" शब्द रखे जाएंगे :

(ii) उप-नियम (2) के पश्चात् निम्नलिखित उप नियम अन्त:स्थापित किया जाएगा, अर्थात् :—

"(3) वादपत्र तब तक सम्यक् रूप से संस्थित किया गया नहीं समझा जाएगा जब तक वह उप नियम (1) और उप नियम (2) में विनिर्दिष्ट अपेक्षाओं का अनुपालन नहीं करता है।"

15. **आदेश 5 का संशोधन**—पहली अनुसूची के आदेश 5 में,

(i) नियम 1 के उपनियम (1) के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाएगा, अर्थात् :—

"(1) जब वाद सम्यक् रूप से संस्थित किया जा चुका हो तब उप संजात होने और दावे का उत्तर देने और अपनी प्रतिरक्षा का लिखित कथन, यदि कोई हो, वाद के संस्थित किए जाने की तारीख से तीस दिन के भीतर ऐसे किसी दिन को जो उसमें विनिर्दिष्ट किया जाए, फाइल करने के लिए समन प्रतिवादी के नाम निकाला जाएगा :

परन्तु जब प्रतिवादी वाद पत्र के उपस्थित किए जाने पर ही उप संजात हो जाए और वादी का दावा स्वीकार कर ले तब ऐसा कोई समन नहीं निकाला जाएगा :

परन्तु यह और कि जहां प्रतिवादी उक्त दिन को लिखित कथन फाइल करने में असफल रहता है, वहां उसे ऐसे किसी अन्य दिन को उसे फाइल करने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा, जो प्रतिवादी पर सम्मन की तामील की तारीख से तीस दिन से परे का नहीं होगा, जो न्यायालय ठीक समझे।";

(ii) नियम 2 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाएगा अर्थात् :—

"2. **सम्मनो से उपाबद्ध वाद पत्र की प्रति**—हर समन के साथ वाद पत्र की एक प्रति होगी।";

(iii) नियम 6 में "प्रतिवादी की उपसंजाति के लिए" शब्दों के स्थान पर, "नियम 1 के उपनियम (1) के अधीन शब्द, अंक और कोष्ठक रखे जाएंगे।"

(iv) नियम 7 में "सब दस्तावेजों" शब्दों के स्थान पर "आदेश 8 के नियम . . . 1क. . . . में विनिर्दिष्ट सब दस्तावेजों या उनकी प्रतियों" शब्द अंक और अक्षर रखे जाएंगे;

(v) नियम 9 के स्थान पर निम्नलिखित नियम रखा जाएगा, अर्थात् :—

"9. **तामील के लिए वादी या उसके अभिकर्ता को समन का परिदान**—(1) न्यायालय, सम्मन निकालेगा और तामील के लिए उन्हें वादी या उसके अभिकर्ता को परिदान करेगा और निदेश देगा कि सम्मन की तामील प्रतिवादी को, या तामील का प्रतिग्रहण करने के लिए सशक्त उसके अभिकर्ता को संबोधित रसीदी रजिस्ट्री डाक द्वारा अथवा स्पीडपोस्ट द्वारा अथवा ऐसी कूरियर सेवा द्वारा जो उच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदित हो अथवा फैक्स संदेश द्वारा अथवा एलैक्ट्रानिक डाक सेवा द्वारा या ऐसे किसी अन्य साधन से जो उच्च न्यायालय नियमों द्वारा विहित करे, उस स्थान पर की जाए जहां प्रतिवादी या उसका अभिकर्ता वास्तव में स्वेच्छा से निवास करता है या कारबार करता है या अभिलाभ के लिए स्वयं काम करता है।

(2) वादी या उसका अभिकर्ता सम्मनों को उप नियम (1) के अधीन न्यायालय द्वारा निदेशित किसी साधन से उक्त उप नियम के अधीन न्यायालय द्वारा वादी को समनों के परिदान की तारीख से दो दिन के भीतर भेजेगा।

(3) जहां न्यायालय प्रतिवादी या उसके अभिकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित होने के लिए तात्पर्यित अभिस्वीकृति या कोई अन्य रसीद प्राप्त करता है या जहां न्यायालय उस डाक वस्तु के जिसमें सम्मन है, ऐसे पृष्ठांकन के साथ वापस प्राप्त करता है, जो डाक कर्मचारी द्वारा या किसी प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा इस आशय से किया गया तात्पर्यित है कि प्रतिवादी या उसके अभिकर्ता ने उस डाक वस्तु को जिसमें सम्मन है, निर्दिष्ट या घोषित किए जाने पर ग्रहण करने से इंकार कर दिया था अथवा उप नियम (1) में विनिर्दिष्ट किन्हीं अन्य साधनों से सम्मनों को प्राप्त करने से इंकार कर दिया था तो सम्मन निकालने वाला न्यायालय यह घोषणा करेगा कि प्रतिवादी पर सम्मन की सम्यक् रूप से तामील की गई थी :

परन्तु जहां सम्मन उचित रूप से पता लिखकर, उस पर पूर्ण संदाय करके और रजिस्ट्री डाक द्वारा सम्यक् रूप से भेजा गया था, वहां इस उपनियम में निर्दिष्ट घोषणा इस तथ्य के होते हुए भी की जाएगी कि अभिस्वीकृति खो जाने या इधर उधर हो जाने या किसी अन्य कारण से नियत तारीख के लिए न्यायालय को प्राप्त नहीं हुई है।

9क. **न्यायालय निर्लंबित प्रक्रिया द्वारा तामील के लिए सम्मन का एक साथ जारी किया जाना**—(1) न्यायालय, वादी को यथा उपबंधित रीति में तामील के लिए सम्मन का परिदान करने के साथ ही साथ जैसा कि नियम 9 में उपबंध किया गया है यह भी निदेश देगा कि सम्मन की तामील प्रतिवादी को, या तामील का प्रतिग्रहण करने के लिए सशक्त उसके अभिकर्ता को संबोधित रसीदी रजिस्ट्री डाक द्वारा उस स्थान पर की जाए जहां प्रतिवादी या उसका अभिकर्ता वास्तव में या स्वेच्छा से निवास करता है या कारबार करता है या अभिलाभ के लिए स्वयं काम करता है।

(2) सम्मन, जब तक न्यायालय अन्यथा निदेश न दे समुचित अधिकारी को उसके द्वारा या उसके अधीनस्थों में से किसी के द्वारा तामील किए जाने के लिए ऐसी रीति से जो उच्च न्यायालय द्वारा विहित की जाए परिदत्त किए जाएंगे या भेजे जाएंगे।

(3) समुचित अधिकारी उस न्यायालय से भिन्न जिसमें वाद संस्थित किया गया है न्यायालय का अधिकारी हो सकेगा और जहां वह ऐसा अधिकारी है वहां सम्मन उसे ऐसी रीति से भेजे जा सकेंगे जो न्यायालय निदेश दे।

(4) समुचित अधिकारी, सम्मनों की तामील, रसीदी रजिस्ट्री डाक द्वारा स्पीड पोस्ट द्वारा, ऐसी कूरियर सेवा द्वारा जो उच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदित हो, फैक्स संदेश द्वारा; ऐलोक्ट्रोनिक डाक सेवा या ऐसे अन्य साधन द्वारा जिसका उपबंध उच्च न्यायालय द्वारा किया जाए, कर सकेगा।";

(vi) नियम 19क का लोप किया जाएगा;

(vii) नियम 21 में "या डाक द्वारा" शब्दों के स्थान पर, "या डाक द्वारा या ऐसी कूरियर सेवा द्वारा जो उच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदित हो, फैक्स संदेश द्वारा या इलैक्ट्रोनिक डाक सेवा द्वारा या ऐसे किन्हीं अन्य साधन द्वारा जिसका उपबंध उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा किया जाए" शब्द रखे जाएंगे;

(viii) नियम 24 में "डाक द्वारा या अन्यथा" शब्दों के स्थान पर "डाक द्वारा या ऐसी कूरियर सेवा द्वारा जो उच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदित हो, फैक्स संदेश द्वारा या ऐलैक्ट्रोनिक मेल सेवा द्वारा या किसी अन्य साधन द्वारा जिसका उपबंध उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा किया जाए" शब्द रखे जाएंगे;

(ix) नियम 25 में "डाक द्वारा भेजा जाएगा" शब्दों के स्थान पर "या डाक द्वारा या ऐसी कूरियर सेवा द्वारा जो उच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदित हो, फैक्स संदेश द्वारा या ऐलोक्ट्रोनिक डाक सेवा द्वारा या किसी अन्य साधन से जिसका उपबंध उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा किया जाए, भेजा जाएगा" शब्द रखे जाएंगे।

16. **आदेश 6 का संशोधन**—पहली अनुसूची के आदेश 6 में,—

(i) नियम 5 का लोप किया जाएगा;

(ii) नियम 15 में, उप-नियम (3) के पश्चात् निम्नलिखित उपनियम अंत:स्थापित किया जाएगा, अर्थात् :—

"(4) अभिवचनों का सत्यापन करने वाला व्यक्ति अपने अभिवचनों के समर्थन में शपथपत्र भी प्रस्तुत करेगा।"

(iii) नियम 17 और नियम 18 का लोप किया जाएगा।

17. **आदेश 7 का संशोधन**—पहली अनुसूची के आदेश 7 में,—

(i) नियम 9 के स्थान पर निम्नलिखित नियम रखा जाएगा, अर्थात् :—

"9 **वादपत्र ग्रहण करने पर प्रक्रिया**—(1) जहां वादपत्र ग्रहण कर लिया जाता है, वहां न्यायालय सभी प्रतिवादियों के नाम के सम्मन आदेश 5 के अधीन उपबंधित रीति से उन पर तामील करने के लिए या तामील करा लिए जाने के लिए वादी को देगा।

(2) वादी, उपनियम (1) के अधीन सम्मनों की प्राप्ति से दो दिन के भीतर आदेश 5 में उपबंधित रीति से सम्मन वादपत्र की प्रति के साथ प्रतिवादी को भेजेगा या भिजवाएगा।

(3) जहां न्यायालय यह आदेश करता है कि प्रतिवादियों पर सम्मनों की तामील आदेश 5 के नियम 9क में उपबंधित रीति से की जाए वहां वह, वादी को ऐसे आदेश की तारीख से दो दिन के भीतर सादा कागज पर वादपत्र की उतनी प्रतियां जितने कि प्रतिवादी हैं, प्रतिवादियों पर सम्मनों की तामील के लिए अपेक्षित फीस के साथ प्रस्तुत करने का निदेश देगा।"

(ii) नियम 11 में उपखंड (ब) के पश्चात् निम्नलिखित उपखंड अंत:स्थापित किए जाएंगे, अर्थात् :—

"(ङ) जहां यह दो प्रतियों में फाइल नहीं किया जाता है;

(च) जहां वादी नियम 9 के उपनियम (2) की अनुपालना; करने में असफल रहता है;

(छ) जहां वादी नियम 9क के उपनियम (3) की अनुपालना करने में असफल रहता है।";

(iii) नियम 14 के स्थान पर निम्नलिखित नियम रखा जाएगा, अर्थात् :—

"14. **उन दस्तावेजों की प्रस्तुति जिन पर वादी वाद लाता है या निर्भर करता है**—(1) जहां वादी किसी दस्तावेज के आधार पर वाद लाता है या अपने दावे के समर्थन में अपने कब्जे या शक्ति में की दस्तावेज पर निर्भर करता है वहां वह उन दस्तावेजों को सूची में प्रविष्ट करेगा और उसके द्वारा वाद पत्र, उपस्थित किए जाने के समय उसे न्यायालय में पेश करेगा और उसी समय दस्तावेज और उसकी प्रति को वाद पत्र के साथ फाइल किए जाने के लिए प्रदत्त करेगा।

(2) जहां ऐसी कोई दस्तावेज वादी के कब्जे या शक्ति में नहीं है वहां जब संभव हो वह यह कथन करेगा कि वह किसके कब्जे या शक्ति में है।

(3) जहां इस नियम के अधीन वाद पत्र के साथ कोई दस्तावेज या उसकी प्रति फाइल या उसकी प्रति फाइल नहीं की जाती है वहां उसे वाद की सुनवाई के समय वादी की ओर से साक्ष्य में ग्रहण किए जाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा।

(4) इस नियम की कोई बात वादी के साक्षी की प्रतिपरीक्षा के लिए प्रस्तुत या किसी साक्षी को केवल उसकी स्मृति को ताजा करने के लिए दिए गए दस्तावेज पर लागू नहीं होगी।";

(iv) नियम 15 का लोप किया जाएगा।

(v) नियम 18 के उपनियम (1) में "न्यायालय की इजाजत के बिना" शब्दों का लोप किया जाएगा।

18. आदेश 8 **का संशोधन**—पहली अनुसूची के आदेश 8 में,—

(i) **लिखित कथन** —नियम 1 के स्थान पर निम्नलिखित नियम रखा जाएगा, अर्थात् :—

"1. प्रतिवादी अपनी प्रतिरक्षा का लिखित कथन पहली सुनवाई के समय या उससे पहले या उतने समय के भीतर जितना न्यायालय अनुज्ञात करे, जो प्रतिवादी को सम्मन तामील करने की तारीख तीस दिन से अधिक नहीं होगा, उपस्थित करेगा।";

(ii) इस प्रकार प्रतिस्थापित नियम 1 के पश्चात् निम्नलिखित नियम अंत: स्थापित किया जाएगा, अर्थात् :—

"1क. **(1) प्रतिवादी का ये दस्तावेज पेश करने का कर्तव्य जिन पर उसके द्वारा अनुतोष का दावा किया गया है या निर्भर किया गया है**—(1) जहां प्रतिवादी अपनी प्रतिरक्षा का आधार किसी ऐसे दस्तावेज को बनाता है या मुजरा के लिए दावा या प्रतिदावा के समर्थन में किसी ऐसे दस्तावेज पर निर्भर करता है जो उसके कब्जे या शक्ति में है, वहां वह ऐसे दस्तावेजों को सूची में प्रविष्ट करेगा और उसे तब पेश करेगा जब उसके द्वारा लिखित कथन उपस्थित किया जाता है और उसी समय लिखित कथन के साथ फाइल किया जाने वाला दस्तावेज और उसकी एक प्रति प्रदत्त करेगा।

(2) जहां कोई ऐसा दस्तावेज प्रतिवादी के कब्जे या शक्ति में नहीं है, वहां वह, जहां कहीं संभव हो, यदि कथित करेगा कि वह किसके कब्जे या शक्ति में है।

(3) यदि इस नियम के अधीन दस्तावेज या उसकी एक प्रति लिखित कथन के साथ फाइल नहीं की जाती है तो उसे वाद की सुनवाई पर प्रतिवादी की ओर से साक्ष्य में ग्रहण किए जाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा।

(4) इस नियम की कोई बात ऐसे दस्तावेजों पर लागू नहीं होगी जो—

(क) वादी के साक्षियों की प्रतिरक्षा के लिए पेश किया जाए; या

(ख) साक्षी को केवल अपनी स्मृति ताजा करने के लिए सौंपे जाएं;"

(iii) नियम 8क, नियम 9 और नियम 10 का लोप किया जाएगा।

19. **आदेश 9 का संशोधन**—पहली अनुसूची के आदेश 9 में,—

(i) नियम 2 के स्थान पर निम्नलिखित नियम रखा जाएगा, अर्थात् :—

जहां सम्मनों की तामील वादी या उसके अभिकर्ता द्वारा या उनके द्वारा खर्चा लेने में असफल रहने के परिणामस्वरूप नहीं की जाती है वहां वाद का खारिज किया जाना—"2. जहां ऐसे नियत दिन को यह पाया जाए कि सम्मन दो दिन की अनुबद्ध अवधि के भीतर वादी या उसके अभिकर्ता द्वारा या उनके द्वारा न्यायालय फीस या किन्हीं प्रभारों का जो ऐसी तामील के लिए प्रभार्य हों, संदाय करने में असफल रहने के परिणामस्वरूप प्रतिवादी को नहीं भेजा गया है, वहां न्यायालय यह आदेश कर सकेगा कि वाद खारिज कर दिया जाए :—

परंतु ऐसी असफलता के होते हुए भी, यदि प्रतिवादी उस दिन जो उसके उपसंजात होने और उत्तर देने के लिए नियत है, स्वयं या जब वह अभिकर्ता के द्वारा उपसंजात होने के लिए अनुज्ञात है, अभिकर्ता द्वारा उपसंजात हो जाता है तो ऐसा कोई आदेश नहीं किया जाएगा।";

(ii) नियम 5 में "एक मास" शब्दों के स्थान पर "सात दिन" शब्द रखे जाएंगे।

20. **आदेश 10 का संशोधन**—पहली अनुसूची के आदेश 10 में,—

(i) नियम 1 के पश्चात् निम्नलिखित नियम अंत:स्थापित किए जाएंगे, अर्थात् :—

"1क. **वैकल्पिक विवाद समाधान के किसी एक तरीके के लिए विकल्प देने के लिए न्यायालय का निदेश**—स्वीकृतियों और प्रत्याख्यानों को अधिलिखित करने के पश्चात्, न्यायालय वाद के पक्षकारों को धारा 89 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट रूप से न्यायालय के बाहर समझौते का किसी भी तरीके का विकल्प देने के लिए निर्देशित करेगा। पक्षकारों के विकल्प पर न्यायालय ऐसे मंच या प्राधिकरण के समक्ष, जो पक्षकारों द्वारा विकल्प दिया जाए, उपसंजात की तारीख नियत करेगा।

1ख. **सुलह मंच या प्राधिकरण के समक्ष उपसंजात होना**—जहां कोई वाद नियम 1क के अधीन विनिर्दिष्ट किया जाता है वहाँ पक्षकार वाद के सुलह के लिए ऐसे मंच या प्राधिकारी के समक्ष उपसंजात होंगे।

1ग. **सुलह के प्रयासों के असफल होने के परिणामस्वरूप न्यायालय के समक्ष उपसंजात होना**—जहां कोई वाद नियम 1क के अधीन निर्दिष्ट किया जाता है और सुलह मंच या प्राधिकरण के पीठासीन अधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि मामले को आगे अग्रसर होना न्यायालय के हित में उचित नहीं होगा तो वह न्यायालय का पुन: मामला निर्दिष्ट करेगा और पक्षकारों को उसके द्वारा नियत तारीख को न्यायालय के समक्ष उपसंजात होने के लिए निर्देशित करेगा।";

(ii) नियम 4 के उपनियम (1) में "न्यायालय वाद की सुनवाई किसी भविष्यवर्ती दिन के लिए मुल्तवी कर सकेगा" शब्दों के स्थान पर "न्यायालय वाद की सुनवाई को किसी ऐसे दिन के लिए जो पहली सुनवाई की तारीख से सात दिन से पश्चात् का न हो, मुल्तवी कर सकेगा" शब्द रखे जाएंगे।

21. **आदेश 11 का संशोधन**—पहली अनुसूची के आदेश 11 में,

(i) नियम 2 में, "न्यायालय के समक्ष रखे जाएंगे" शब्दों के पश्चात् "और वह न्यायालय उक्त आवेदन के फाइल किए जाने के दिन से सात दिन के भीतर विनिश्चय करेगा" शब्द अंत:स्थापित किए जाएंगे।

(ii) नियम 15 में, "किसी भी समय" शब्दों के स्थान पर "विवाद्यकों के स्थिरीकरण के समय या उसके पूर्व" शब्द रखे जाएंगे।

22. **आदेश 12 का संशोधन**—पहली अनुसूची के आदेश 12 में,—

(i) नियम 2 में, "पन्द्रह" शब्द के स्थान पर "सात" शब्द रखा जाएगा;

(ii) नियम 4 में, दूसरे परन्तुक का लोप किया जाएगा।

23. **आदेश 13 का संशोधन**—पहली अनुसूची के आदेश 13 में, नियम 1 और नियम 2 के स्थान पर निम्नलिखित नियम रखा जाएगा, अर्थात् :—

"1 **मूल दस्तावेजों का विवाद्यकों के स्थिरीकरण के समय या उसके पूर्व पेश किया जाना**—(1) पक्षकार या उनके प्लीडर मूल सभी दस्तावेजी साक्ष्य जहां उनकी प्रतियां वादपत्र या लिखित कथन के साथ फाइल की गई हैं, विवाद्यकों के स्थिरीकरण के समय या उसके पूर्व पेश करेगा।

(2) न्यायालय इस प्रकार पेश किए गए दस्तावेजों को ले लेगा : परन्तु यह तब जब कि वह उनके साथ ऐसे प्ररूप में तैयार की गई एक सही सही सूची हो जो उच्च न्यायालय ने निर्दिष्ट किया हो।

(3) उपनियम (1) की कोई बात ऐसे दस्तावेजों पर लागू नहीं होगी, जो—

(क) अन्य पक्षकार के साक्षियों की प्रतिपरीक्षा के लिए पेश किए जाएं; या

(ख) किसी साक्षी को उसकी स्मृति ताजा करने के लिए सौंपे जाएं।"—

24. **आदेश 14 का संशोधन**—पहली अनुसूची के आदेश 14 में,—

(i) नियम 4 में, "वह विवाद्यकों की विरचना किसी भविष्यवर्ती दिन के लिये स्थगित कर सकेगा" शब्दों के स्थान पर "वह विवाद्यकों की विरचना किसी ऐसे दिन के लिए स्थगित कर सकेगा जो सात दिन के पश्चात् का न हो" शब्द रखे जाएंगे।

(ii) नियम 5 का लोप किया जाएगा।

25. **आदेश 16 का संशोधन**—पहली अनुसूची के आदेश 16 में,—

(i) नियम 1 के उपनियम (4) में, "न्यायालय द्वारा इस निमित्त" शब्दों के स्थान पर "न्यायालय" द्वारा इस निमित्त उपनियम (1) के अधीन साक्षियों की सूची उपस्थित करने के पांच दिन के भीतर" शब्द, कोष्ठक और अंक रखे जाएंगे;

(ii) नियम 2 के उपनियम (1) में, "उस अवधि के भीतर जो नियत की जाए" शब्दों के पश्चात् "जो नियम 1 के उपनियम (4) के अधीन आवेदन करने की तारीख से सात दिन के पश्चात् का न हो" शब्द, कोष्ठक और अंक अंत:स्थापित किए जाएंगे।

26. **आदेश 17 का संशोधन**—पहली अनुसूची के आदेश 1 के नियम 17 में,—

(i) उपनियम (1) के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाएगा, अर्थात् :—

"(1) यदि वाद के किसी भी प्रक्रम पर पर्याप्त हेतुक दर्शित किया जाता है तो न्यायालय लेखबद्ध कारणों से पक्षकारों या उनमें से किसी को भी समय दे सकेगा और वाद की सुनवाई को समय-समय पर स्थगित कर सकेगा :

परन्तु ऐसा कोई स्थगन वाद की सुनवाई के दौरान किसी पक्षकार को तीन बार से अधिक नहीं अनुदत्त किया जाएगा।" :

(ii) उपनियम (2) में, "ऐसे स्थगन के कारण हुए खर्चों के संबंध में ऐसा आदेश कर सकेगा जो वह ठीक समझे" शब्दों के स्थान पर "ऐसे स्थगन के कारण हुए खर्चों या ऐसे उच्चतर खर्चों जो न्यायालय ठीक समझे, के संबंध में ऐसे आदेश करेगा" शब्द रखे जाएंगे।

27. **आदेश 18 का संशोधन**—पहली अनुसूची के आदेश 18 में,—

(i) नियम 2 के उपनियम (4) का लोप किया जाएगा;

(ii) नियम 4के स्थान पर निम्नलिखित नियम रखा जाएगा, अर्थात् :—

4. **कमिश्नर द्वारा साक्ष्य का अभिलेखन**—(1) प्रत्येक मामले में, किसी साक्षी का उसकी मुख्य परीक्षा का साक्ष्य शपथपत्र द्वारा दिया जाएगा और उसकी प्रतियों को विरोधी पक्षकार को उस पक्षकार द्वारा प्रदाय किया जाएगा जो साक्ष्य के लिए उसे बुलाता है।

(2) हाजिर उस साक्षी का साक्ष्य (प्रतिपरीक्षा और पुन: परीक्षा) जिसका शपथपत्र द्वारा साक्ष्य (मुख्य परीक्षा) न्यायालय को दे दिया गया है, उस कमिश्नर द्वारा मौखिक रूप से लिया जाएगा जिसकी नियुक्ति न्यायालय द्वारा उसी दिन इस प्रयोजन के लिए तैयार किए गए कमिश्नरों के पैनल में से की जाएगी :

परन्तु न्यायालय, न्याय के हित में और लेखबद्ध किए गए कारणों से, यह निदेश दे सकेगा कि किसी ऐसे साक्षी का साक्ष्य न्यायालय द्वारा न्यायाधीश की उपस्थिति में और उसके वैयक्तिक निदेशन तथा अधीक्षण के अधीन अभिलिखित किया जाएगा।

(3) कमिश्नर को साक्ष्य के अभिलेखन के लिए ऐसी राशि संदत्त की जाएगी जो उच्च न्यायालय द्वारा विहित की जाए।

(4) उपनियम (3) के अधीन कमिश्नर को संदेय रकम, न्यायालय द्वारा या साक्षी को समन करने वाले पक्षकारों द्वारा, जो उच्च न्यायालय द्वारा विहित किया जाए, संदत्त की जाएगी।

(5) जिला न्यायाधीश इस नियम के अधीन साक्ष्य अभिलिखित करने के लिए कमिश्नरों का एक पैनल तैयार करेगा।

(6) कमिश्नर साक्ष्य लिखित रूप में या यांत्रिक रूप से अपनी उपस्थिति में अभिलिखित करेगा और एक ज्ञापन तैयार करेगा जिस पर उसके और साक्षियों द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे और उसे ऐसे कमिश्नर की नियुक्ति करने वाले न्यायालय को प्रस्तुत करेगा।

(7) जहां कोई ऐसा प्रश्न किसी साक्षी से पूछा जाता है जिस पर किसी पक्षकार या उसके प्लीडर द्वारा आपत्ति की गई है तथा कमिश्नर उसे पूछने के लिए अनुज्ञात करता है, वहां कमिश्नर वह प्रश्न अपने विनिश्चय के साथ लिखेगा।"

(iii) नियम 17क का लोप किया जाएगा;

(iv) नियम 18 के पश्चात् निम्नलिखित नियम अंत:स्थापित किया जाएगा, अर्थात् :—

"19. **कथन को कमीशन पर अभिलिखित कराने की शक्ति**—इन नियमों में किसी बात के होते हुए भी, न्यायालय, खुले न्यायालय में साक्षियों की परीक्षा करने के बजाए आदेश 26 के नियम 4क के अधीन उनके कथन को कमीशन पर अभिलिखित किए जाने के लिए निदेश दे सकेगा।"

28. **आदेश 20 का संशोधन**—पहली अनुसूची के आदेश 20 में,—

(i) नियम 1 के उपनियम (2) में, "किंतु संपूर्ण निर्णय की एक प्रति निर्णय सुनाए जाने के तुरन्त पश्चात् पक्षकारों या प्लीडरों के परिशीलन के लिए उपलब्ध कराई जाएगी" शब्दों का लोप किया जाएगा;

(ii) नियम 6क और नियम 6ख के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाएगा, अर्थात् :—

"6क. **डिक्री तैयार करना**—(1) यह सुनिश्चित करने के लिए हर प्रयास किया जाएगा कि डिक्री जहां तक संभव हो शीघ्रता से और किसी भी दशा में उस तारीख से पंद्रह दिन के भीतर जिसको निर्णय सुनाया जाता है, तैयार की जाती है।

(2) डिक्री की प्रति फाइल किए बिना डिक्री के विरुद्ध अपील की जा सकेगी और किसी ऐसी दशा में न्यायालय द्वारा पक्षकार को उपलब्ध कराई गई प्रति आदेश 41 के नियम 1 के प्रयोजनों के लिए डिक्री मानी जाएगी। किन्तु जैसे ही डिक्री तैयार हो जाती है, निर्णय निष्पादन के प्रयोजनों के लिए या किसी अन्य प्रयोजन के लिए डिक्री का प्रभाव नहीं रखेगा।

6ख. **निर्णयों की प्रतियां कब उपलब्ध कराई जाएंगी**—जहां निर्णय सुना दिया गया है वहां निर्णय की प्रतियां पक्षकारों को निर्णय के सुनाए जाने के ठीक पश्चात् अपील करने के लिए ऐसे प्रभारों के संदाय पर उपलब्ध कराई जाएंगी जो उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों में विनिर्दिष्ट किए जाएंगे''।

29. **आदेश 26 का संशोधन**—पहली अनुसूची के आदेश 26 के नियम 4 के पश्चात् निम्नलिखित नियम अंत:स्थापित किया जाएगा, अर्थात् :—

''4क. **न्यायालय की स्थानीय सीमाओं के भीतर निवास करने वाले किसी व्यक्ति की परीक्षा के लिए कमीशन**—इन नियमों में किसी बात के होते हुए भी, कोई न्यायालय किसी वाद में न्याय के हित में या मामले को शीघ्र निपटाने के लिए या किसी अन्य कारण से अपनी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर निवास करने वाले किसी व्यक्ति की परिप्रश्नों पर या अन्यथा परीक्षा के लिए कमीशन निकाल सकेगा और इस प्रकार अभिलिखित साक्ष्य को साक्ष्य में पढ़ा जाएगा।

30. **आदेश 39 का संशोधन**—पहली अनुसूची के आदेश 39 में, नियम 1 को उस नियम के उपनियम (1) के रूप में पुन: संख्यांकित किया जाएगा और इस प्रकार पुन: संख्यांकित उपनियम (1) के पश्चात् निम्नलिखित उप नियम अंत:स्थापित किया जाएगा, अर्थात् :—

''(2) न्यायालय संपत्ति पर रोक लगाने और उसका दुर्व्ययन, नुकसान, अन्य संक्रामण, विक्रय, हटाए जाने या व्ययन करने को निवारित करने या वादी को बेकब्जा करने के प्रयोजनों के लिए ऐसे कार्य या उपनियम (1) के अधीन बाद में व्ययनाधीन किसी संपत्ति के संबंध में वादी को अन्यथा क्षति कारित करने को अवरुद्ध करने या ऐसा अन्य आदेश करने के लिए अस्थायी व्यादेश अनुदत्त करते समय वादी को ऐसी प्रतिभूति या अन्यथा देने के लिए निदेश देगा जो न्यायालय ठीक समझे।''।

31. **नए आदेश 39क का अन्त: स्थापन**—पहली अनुसूची में आदेश 39 के पश्चात् निम्नलिखित आदेश अंत: स्थापित किया जाएगा, अर्थात् :—

''आदेश 39क

वाद संस्थित किए जाने से पहले निरीक्षण

1. **विधिक प्रतिनिधि द्वारा निरीक्षण के लिए आवेदन फाइल करना**—ऐसी दशा में जहां अनुतोष प्रदान करने के लिए ऐसा वाद फाइल करने के लिए सक्षम व्यक्ति व्यादेश के लिए वाद फाइल करने के लिए उपलब्ध नहीं हैं, वहां उस व्यक्ति का विधिक प्रतिनिधि विवाद में के किसी विषय के विशदीकरण के प्रयोजन के लिए संपत्ति का स्थानीय निरीक्षण करने के लिए कमीशन की नियुक्ति के लिए सक्षम अधिकारिता के न्यायालय में आवेदन फाइल कर सकेगा और ऐसा कमीशन आदेश 26 के अधीन नियुक्त किया गया समझा जाएगा।

2. **वाद फाइल करना**—नियम 1 के अधीन आवेदन फाइल करने की तारीख से सात दिन के भीतर वाद फाइल करने के लिए सक्षम व्यक्ति सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय में व्यादेश के लिए वाद फाइल करेगा।''

32. **आदेश 41 का संशोधन**—पहली अनुसूची के आदेश 41 में,—

(i) नियम 1 के उपनियम (1) में ''ज्ञापन के साथ उस डिक्री की प्रति होगी जिसकी अपील की जाती है और (जब तक अपील न्यायालय वैसा करने से अभिमुक्ति न दे दें) उस निर्णय की प्रति होगी जिस पर वह डिक्री आधारित है,'' शब्दों और कोष्ठकों के स्थान पर ''ज्ञापन के साथ निर्णय की प्रति होगी'' शब्द रखे जाएंगे।

(ii) नियम 9 के स्थान पर निम्नलिखित नियम रखा जाएगा, अर्थात् :—

''9. **अपीलों के ज्ञापन का रजिस्टर में चढ़ाया जाना**—(1) वह न्यायालय जिसकी डिक्री के विरुद्ध अपील होती है, अपील के ज्ञापन को ग्रहण करेगा और उस पर उसके उपस्थिति किए जाने की तारीख पृष्ठांकित करेगा और अपील को उस प्रयोजन के लिए रखी जाने वाली पुस्तक में चढ़ाएगा।

(2) ऐसी पुस्तक अपीलों का रजिस्टर कहलाएगी।'';

(iii) नियम 11 के उपनियम (1) के स्थान पर निम्नलिखित उपनियम रखा जाएगा, अर्थात् :—

''(1) अपील न्यायालय अपीलार्थी या उसके प्लीडर को सुनने के लिए दिन नियत करने के पश्चात् और यदि वह उस दिन उपसंजात होता है तो तदनुसार उसे सुनने के पश्चात् अपील को खारिज कर सकेगा।'';

(iv) नियम 12 के उपनियम (2) के स्थान पर निम्नलिखित उपनियम रखा जाएगा, अर्थात् :—

''(2) ऐसा दिन न्यायालय के चालू कारबार को ध्यान में रखते हुए नियत किया जाएगा।'';

(v) नियम 13, नियम 15 और नियम 18 का लोप किया जाएगा;

(vi) नियम 19 में, ''या नियम 18'' शब्दों और अंकों का लोप किया जाएगा;

(vii) नियम 22 के उपनियम (3) का लोप किया जाएगा।

अध्याय 4

निरसन और व्यावृत्ति

33. (1) इस अधिनियम के प्रारंभ के ठीक पहले राज्य विधान-मंडल या उच्च न्यायालय द्वारा मूल अधिनियम में किया गया कोई संशोधन या अंत:स्थापित किया गया कोई उपबंध, वहां तक के सिवाय जहां तक ऐसा संशोधन या उपबंध इस अधिनियम द्वारा संशोधित मूल अधिनियम के उपबंधों से संगत है, निरसित हो जाएगा।

(2) इस बात के होते हुए भी कि इस अधिनियम के उपबंध उपधारा (1) के अधीन प्रवृत्त हो चुके हैं या निरसित हो गए हैं और साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना;—

(क) इस अधिनियम की धारा 2 और धारा 14 द्वारा संशोधित मूल अधिनियम की धारा 26 और पहली अनुसूची में आदेश 4 के उपबंध धारा 2 और धारा 14 के प्रारंभ के ठीक पहले लंबित किसी वाद पर लागू नहीं होंगे या उसे प्रभावित नहीं करेंगे और प्रत्येक ऐसे वाद का विचारण ऐसे किया जाएगा मानो धारा 2 और धारा 14 प्रवर्तन में आयी ही नहीं थी।

(ख) इस अधिनियम की धारा 3 द्वारा यथा संशोधित मूल अधिनियम की धारा 27 के उपबंध धारा 3 के प्रारंभ के ठीक पूर्व किसी लंबित वाद पर लागू नहीं होंगे या उस पर प्रभाव नहीं डालेंगे और प्रत्येक ऐसे वाद का विचारण ऐसे किया जाएगा मानों धारा 3 प्रवर्तन में आई ही नहीं थी।

(ग) इस अधिनियम की धारा 5 द्वारा यथा संशोधित मूल अधिनियम की धारा 58 के उपबंध, धारा 5 के आरंभ के पूर्व किसी डिक्री के निष्पादन में सिविल कारागार में निरुद्ध किसी व्यक्ति पर लागू नहीं होंगे या प्रभाव नहीं डालेंगे।

(घ) इस अधिनियम की धारा 6 द्वारा यथा संशोधित मूल अधिनियम की धारा 60 के उपबंध, धारा 6 के प्रारंभ के पूर्व धारा 60 की उपधारा (1) के पहले परन्तुक के खण्ड (i) में उल्लिखित सीमा की कुर्की से वेतन को छूट नहीं देंगे;

(ङ) इस अधिनियम की धारा 7 और धारा 20 द्वारा मूल अधिनियम में यथा अंत:स्थापित धारा 89 और पहली अनुसूची के आदेश 10 के नियम 1क, 1ख और 1ग किसी ऐसे वाद पर प्रभाव नहीं डालेगी जिसमें विवाद्यक धारा 7 के प्रारंभ के पूर्व तय कर लिए गए हैं; और ऐसे प्रत्येक वाद पर इस तरह कार्रवाई की जाएगी मानो धारा 7 और धारा 20 प्रवृत्त ही नहीं हुई थीं;

(च) इस अधिनियम की धारा 9 द्वारा यथा संशोधित मूल अधिनियम की धारा 96 के उपबंध मूल डिक्री से, जो धारा 9 के प्रारंभ के पूर्व स्वीकार की गई थी, किसी अपील पर लागू नहीं होंगे करेंगे या प्रभावी नहीं करेगी; और प्रत्येक स्वीकार की गई अपील में इस तरह कार्रवाई की जाएगी मानों धारा 9 प्रवृत्त ही नहीं हुई थी;

(छ) इस अधिनियम की धारा 10 द्वारा यथा प्रतिस्थापित मूल अधिनियम की धारा 100क के उपबंध संविधान के अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के विनिश्चय के विरुद्ध किसी ऐसी अपील पर लागू नहीं होंगे या उस पर प्रभाव नहीं डालेंगे जो धारा 10 के आरंभ के पूर्व स्वीकार कर ली गई थी और प्रत्येक ऐसी स्वीकार की गई अपील इस प्रकार निपटाई जाएगी मानो धारा 10 प्रवृत्त न हुई हो;

(ज) इस अधिनियम की धारा 11 द्वारा यथा प्रतिस्थापित मूल अधिनियम की धारा 102 के उपबंध किसी ऐसी अपील पर लागू नहीं होंगे या प्रभाव नहीं डालेंगे जिसको धारा 11 के आरंभ होने से पूर्व ग्रहण किया गया था और ऐसी प्रत्येक अपील का निपटान किया जाएगा मानो धारा 11 लागू ही न हुई हो :

(झ) इस अधिनियम की धारा 12 द्वारा संशोधित मूल अधिनियम की धारा 115 के उपबंध पुनरीक्षण के लिए किसी कार्यवाही पर जो अंतिम रूप से निपटा दी गई हैं, लागू नहीं होंगे या उन्हें प्रभावित नहीं करेंगे;

(ञ) इस अधिनियम की धारा 15 द्वारा यथास्थिति संशोधित अंत:स्थापित या लोपित पहली अनुसूची के आदेश 5 के नियम 1, 2, 6, 7, 9, नियम 9क, नियम 19क, नियम 21, नियम 24 और 25 के उपबंध धारा 15 के प्रारंभ के ठीक पहले जारी किए गए सम्मनों पर लागू नहीं होंगे।

(ट) इस अधिनियम की धारा 17 द्वारा यथा संशोधित या यथास्थिति रखी गई या संशोधित की गई पहली अनुसूची के आदेश 7 के नियम 9, नियम 11, नियम 14, नियम 15 और नियम 18 के उपबंध धारा 17 के आरंभ के पूर्व किन्हीं लंबित कार्यवाहियों की बाबत लागू नहीं होंगे।

(ठ) इस अधिनियम की धारा 18 द्वारा यथा प्रतिस्थापित या अंत:स्थापित पहली अनुसूची के आदेश 8 के नियम 1 और नियम 1क के उपबंध धारा 18 के प्रारंभ के ठीक पूर्व न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए और प्रस्तुत किए गए लिखित कथन पर लागू नहीं होंगे।

(ड) इस अधिनियम की धारा 19 द्वारा यथा संशोधित पहली अनुसूची के आदेश 9 के नियम 2 और नियम 5 के उपबंध धारा 19 के प्रारंभ होने से पूर्व के सम्मनों पर लागू नहीं होंगे;

(ढ) इस अधिनियम की धारा 21 द्वारा यथा संशोधित पहली अनुसूची के आदेश 9 के नियम 2 और नियम 15 के उपबंध न्यायालय द्वारा किए गए किसी आदेश अथवा इस अधिनियम की धारा 21 के प्रारंभ होने के पहले न्यायालय में निरीक्षण के लिए पेश किए गए किसी आवेदन पर लागू नहीं होंगे या प्रभावित नहीं करेंगे;

(ण) इस अधिनियम की धारा 22 द्वारा यथास्थिति यथा संशोधित और लोप किए गए पहली अनुसूची के आदेश 12 के नियम 2 और नियम 4 के उपबंध इस अधिनियम की धारा 22 के प्रारंभ होने के पहले पक्षकार द्वारा दिए गए किसी नोटिस या न्यायालय द्वारा किए गए किसी आदेश को प्रभावित नहीं करेंगे;

(त) इस अधिनियम की धारा 23 द्वारा यथा प्रतिस्थापित पहली अनुसूची के आदेश 13 के नियम 1 और नियम 2 के उपबंध इस अधिनियम की धारा 23 के प्रारंभ होने के पहले पक्षकारों द्वारा पेश किए गए दस्तावेजों या ऐसे दस्तावेजों को जिनके पेश किए जाने के लिए न्यायालय द्वारा आदेश किए गए हैं प्रभावित नहीं करेंगे;

(थ) इस अधिनियम की धारा 24 द्वारा यथा संशोधित और लोप किए गए पहली अनुसूची के आदेश 144 के नियम 4 और नियम 5 के उपबंध इस अधिनियम की धारा 24 के प्रारंभ होने के पूर्व न्यायालय द्वारा विवाद्यकों को बनाए जाने का स्थगन और विवाद्यकों में संशोधन तथा उन्हें निकालने के लिए किए गए आदेश को प्रभावित नहीं करेंगे।

(द) इस अधिनियम की धारा 25 द्वारा संशोधित पहली अनुसूची के आदेश 16 के नियम 1 और नियम 2 के उपबंध धारा 25 के प्रारंभ के पूर्व न्यायालयों द्वारा साक्षियों को सेवन करने के लिए और साक्षियों को सम्मन करने के लिए जमा करने के लिए किसी पक्षकार को दिए गए समय पर प्रभाव नहीं डालेंगे;

(ध) इस अधिनियम की धारा 25 द्वारा संशोधित पहली अनुसूची के आदेश 17 के नियम 1 के उपबंध धारा 25 के प्रारंभ के पूर्व न्यायालय द्वारा दिए गए किसी स्थगन और न्यायालय द्वारा दिए गए स्थगन के कारण हुए किसी खर्च पर प्रभाव नहीं डालेंगे और पहले दिए गए स्थगनों की इस प्रयोजन के लिए गणना नहीं की जाएगी;

(न) इस अधिनियम की धारा 28 द्वारा संशोधित और प्रतिस्थापित पहली अनुसूची के आदेश 20 के नियम 1, नियम 6क और नियम 6ख के उपबंध इस अधिनियम की धारा 28 के प्रारंभ के पूर्व अपील फाइल करने के लिए डिक्री की प्रति अभिप्राप्त करने के लिए आवेदन और फाइल की गई किसी अपील पर प्रभाव नहीं डालेंगे और धारा 28 के प्रारंभ के पूर्व फाइल की गई प्रत्येक अपील पर ऐसी कार्यवाही की जाएगी मानो धारा 28 प्रवृत्त ही नहीं हुई थी।

(प) इस अधिनियम की धारा 30 द्वारा अंत:स्थापित पहली अनुसूची के आदेश 39 के नियम 1 के उपनियम (2) के उपबंध इस अधिनियम की धारा 30 के प्रारंभ के पूर्व दिए गए किसी अस्थायी व्यादेश पर प्रभाव नहीं डालेंगे।

(फ) विधेयक के खंड 32 द्वारा, यथास्थिति, संशोधित, प्रतिस्थापित और लोप किए गए पहली अनुसूची के आदेश 41 के नियम 1, नियम 9, नियम 11, नियम 12, नियम 13, नियम 15, नियम 18, नियम 19 और नियम 22 के उपबंध धारा 32 के प्रारंभ के पूर्व फाइल की गई किसी अपील पर प्रभाव नहीं डालेंगे और धारा 32 के प्रारंभ के पूर्व लंबित प्रत्येक अपील का निपटारा ऐसे किया जाएगा मानो इस विधेयक की धारा 32 प्रवृत्त ही नहीं हुई थी।

अध्याय 5

परिसीमा अधिनियम, 1963 का संशोधन

34. धारा 12 का संशोधन—परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 12 की उपधारा (3) में, "जिस पर डिक्री या आदेश आधारित किया जाता है" का लोप किया जाएगा।

अध्याय 6

न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 का संशोधन

35. **नई धारा 16 का अंत:स्थापन**—न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 की (जिसे इसमें इसके पश्चात् न्यायालय फीस अधिनियम कहा गया है) धारा 15 के पश्चात् निम्नलिखित धारा अंत:स्थापित की जाएगी, अर्थात् :—

"16. **1908 का 5 फीस का प्रतिसंदाय**—जहां न्यायालय वाद के पक्षकारों को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 89 में उल्लिखित विवाद के परिनिर्धारण के ढंगों में से कोई ढंग निर्देशित करता है, वहां वादी न्यायालय से ऐसा प्रमाणपत्र प्राप्त करने का हकदार होगा जिसमें उसे कलक्टर से ऐसे वाद के संबंध में संदत्त फीस की पूरी रकम वापस प्राप्त करने के लिए प्राधिकृत किया गया हो।"

36. **दूसरी अनुसूची का संशोधन**—न्यायालय फीस अधिनियम की दूसरी अनुसूची में, क्रम सं. 1क और उससे संबंधित प्रविष्टियों के पश्चात् निम्नलिखित क्रम सं. और उस की प्रविष्टियाँ अन्त:स्थापित की जाएंगी, अर्थात् :—

1908 का 5—"1ख.	किसी सिविल न्यायालय प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 39क के अधीन स्थानीय निरीक्षण के लिए आवेदन।"	जब वह सिविल न्यायालय में उपस्थित किया जाता है।	रु० 50

उद्देश्यों और कारणों का कथन

भारत में वादों और सिविल कार्यवाहियों में प्रक्रिया से संबंधित विधि (उन्हें छोड़कर जो जम्मू-कश्मीर राज्य और नागालैंड राज्य तथा असम के जनजाति क्षेत्रों और कतिपय अन्य क्षेत्रों में हैं) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में अन्तर्विष्ट है। संहिता का विभिन्न केन्द्रीय अधिनियमों और राज्य विधान-मंडलों द्वारा समय-समय पर संशोधन किया गया है। संहिता मुख्यत: दो भागों अर्थात् धाराओं और आदेशों, में विभाजित है। जब कि मुख्य सिद्धांत धाराओं में अन्तर्विष्ट है, धाराओं में व्यवहृत विषयों के संबंध में विस्तृत प्रक्रियाएं आदेशों में अन्तर्विष्ट धारा 122 के अधीन, उच्च न्यायालयों को आदेशों में अधिकथित प्रक्रिया का, नियमों द्वारा, संशोधन करने की शक्ति है। इन शक्तियों के प्रयोग में, विभिन्न संशोधन भिन्न-भिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा आदेशों में किए गए हैं।

2. संयुक्त मोर्चा सरकार के न्यूनतम साझा कार्यक्रम के अनुसार यह परिकल्पित था कि न्यायिक सुधारों और तीन वर्ष की अवधि के भीतर लंबित मामलों के निपटारे के संबंध में एक विधेयक संसद् में पुर:स्थापित किया जाए। भारत की जनता को किए गए वादों को ध्यान में रखते हुए जिससे कि मामलों का शीघ्र निपटारा नियत समय सीमा के भीतर हो सके और न्यायमूर्ति वी० एस० मालिमथ की रिपोर्ट को कार्यान्वित करने की दृष्टि से यह आवश्यक समझा गया कि इस विषय पर राज्य सरकारों के विचार भी प्राप्त किए जाएं। नई दिल्ली में 30 जून और 1 जुलाई, 1997 को हुए विधि मंत्री सम्मेलन में, सिविल प्रकिया संहिता, 1908 के प्रस्तावित संशोधनों संबंधी कार्यपत्र पर विचार-विमर्श किया गया था। उक्त सम्मेलन में अंगीकार किए गए संकल्प के आधार पर और न्यायमूर्ति मालिमथ समिति की, भारत के विधि आयोग की 129वीं रिपोर्ट की सिफारिशों और अधीनस्थ विधानों (11वीं लोक सभा) संबंधी समिति की सिफारिशों को कार्यान्वित करने की दृष्टि से यह प्रस्ताव है कि अन्य बातों में इस बात को ध्यान में रखते हुए कि सिविल वादों और कार्यवाहियों को शीघ्रता से निपटाने के लिए हर प्रयास किए जाने चाहिएं जिससे कि न्याय में विलंब न हो, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के संशोधनों के लिए एक विधेयक पुर:स्थापित किया जाए।

3. कुछ अधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन, जिनके किए जाने का प्रस्ताव है, निम्नलिखित हैं :—

(क) फाइल किया जाने वाला वादपत्र, दो प्रतियों में होगा और उसके साथ ऐसे सभी दस्तावेज होंगे, जिन पर वादी अपने दावे के समर्थन में निर्भर करता है। यह ऐसे शपथपत्र द्वारा भी समर्थित होगा जिसमें वादी के दावे की और ऐसे दस्तावेजों की, जिन पर वह निर्भर करता है, असलियत के बारे में कथन हो ;

(ख) दो प्रतियों में लिखित कथन के साथ सभी दस्तावेज होंगे और सम्मन तामील किए जाने की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर फाइल किया जाएगा। लिखित कथन भी शपथ पत्र द्वारा समर्थित होगा ;

(ग) सम्मन की तामील में विलंब को कम करने के लिए यह प्रस्ताव है कि वादी न्यायालय से समन लेगा और उस पक्षकार को, सम्मन की प्राप्ति के दो दिन के भीतर, डाक द्वारा, फैक्स, ई-मेल, त्वरित डाक, कूरियर सेवा द्वारा या ऐसे अन्य साधन द्वारा पक्षकार को भेजेगा जो न्यायालयों द्वारा निर्दिष्ट किए जाएं।

(घ) भारत के विधि आयोग की एक सौ उनतीसवीं रिपोर्ट को कार्यान्वित करने की दृष्टि से और सुलह की स्कीम को प्रभावी करने के लिए यह प्रस्ताव किया जाता है कि न्यायालय के लिए यह बाध्यकारी किया जाए कि वह विवादों को विवाद्यक विरचित करने के पश्चात् समझौते के लिए माध्यस्थम्, सुलह, बिचौलिया, न्यायिक परिनिर्धारण के माध्यम से या लोक अदालत के माध्यम से निपटान के लिए निर्देशित करे। यह केवल पक्षकार अपने विवादों को आनुकल्पिक विवाद संकल्प तरीकों में से किसी के द्वारा तय कराने में असफल रहने के पश्चात् ही उक्त वाद में उसी न्यायालय में आगे कार्यवाही की जाएगी जिसमें वह फाइल किया गया था ;

(ङ) चूंकि न्यायालयों द्वारा मौखिक साक्ष्य अभिलिखित करने में अधिकतम समय नष्ट होता है इसकी वजह से मामलों के निपटारे में विलम्ब होता है इसलिए यह प्रस्ताव किया जाता है कि प्रत्येक साक्षी की शपथपत्र के रूप में मुख्य परीक्षा फाइल करने के लिए उपबंध करके ऐसे विलम्ब को कम किया जाए। साक्षियों की प्रतिपरीक्षा और पुन: परीक्षा के लिए यह प्रस्ताव किया जाता है कि वह न्यायालय द्वारा नियुक्त किए जाने वाले कमिश्नर द्वारा अभिलिखित की जाएगी और कमिश्नर द्वारा अभिलिखित किया गया साक्ष्य वाद के अभिलेख, का भाग होगा;

(च) अनावश्यक स्थगनों को कम करने के लिए कदम उठाने के संबंध में अधीनस्थ विधान संबंधी समिति की (ग्यारहवीं लोक सभा) सिफारिशों को कार्यान्वित करने की दृष्टि से यह प्रस्ताव किया जाता है कि न्यायाधीशों के लिए मामले के स्थगन के लिए स्थगन की मांग करने वाले पक्षकारों के विरुद्ध वास्तविक या उच्चतर खर्चे न कि मीमांसात्मक खर्चे के लिए कारणों को अभिलिखित करना बाध्यकर किया जाए। विरोधी पक्षकार के पक्ष में मामले की सुनवाई के दौरान स्थगनों की संख्या केवल तीन तक समिति करने का प्रस्ताव है ;

(छ) चूंकि वह पक्षकार जिसके पक्ष में व्यादेश प्रदान किया गया है; प्राधिकृत तुच्छ और अयुक्तियुक्त आधारों पर विलम्ब करता है इसीलिए यह प्रस्ताव किया जाता है कि वह पक्षकार, जो व्यादेश के लिए आवेदन करता है, प्रतिभूति देगा जिससे कि वह पक्षकार मामले के विचारण के दौरान विलम्बकारी युक्तियों को अपना न सके;

(ज) संपत्ति के विवादों विशेषकर किसी अन्य की भूमि पर अप्राधिकृत निर्माण से संबंधित मामलों में यह पाया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के विद्यमान् उपबंधों के अधीन व्यादेश के लिए कोई आवेदन केवल तभी किया जा सकता है जब सक्षम अधिकारिता रखने वाले न्यायालय में पहले वाद फाइल कर दिया गया हो। इस कठिनाई को दूर करने की दृष्टि से यह प्रस्ताव किया जाता है कि वह व्यक्ति सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय में संपत्ति की वास्तविक स्थिति को सुनिश्चित करने के लिए आयुक्त की नियुक्ति के लिए आवेदन करे जिससे नियमित वाद फाइल करने के समय विवादग्रस्त संपत्ति की वास्तविक स्थिति के संबंध में रिपोर्ट कमिश्नर को उपलब्ध हो ;

(झ) न्यायमूर्ति मालिमथ समिति की सिफारिशों को कार्यान्वित करने की दृष्टि से यह प्रस्ताव किया जाता है कि एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध यहां तक कि संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के अधीन याचिकाओं में भी कोई और अपील नहीं होगी ; और

(ञ) विलम्ब को कम करने की दृष्टि से यह प्रस्ताव किया जाता है कि न्यायालय निर्णय सुनाने की तारीख को निर्णय सुनाए जाने के साथ ही पक्षकारों को निर्णय की अधिप्रमाणित प्रतियां उपलब्ध कराएगा। अपील उसी न्यायालय में फाइल की जाएगी जो डिक्री पारित करता है और प्रथम अवसर के न्यायालय में पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सूचना की तामील नहीं की जाएगी।

3. विधेयक उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए है।

नई दिल्ली ;

12 अगस्त, 1987

रमाकान्त डी० खलप

खंडों पर टिप्पण

खंड 2—संहिता की धारा 26 में, कोई वाद, वादपत्र को उपस्थित करके या ऐसे अन्य प्रकार से, जो उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विहित किया जाए, संस्थित किया जाता है चूंकि ये नियम विभिन्न उच्च न्यायालयों में भिन्न-भिन्न हैं। अत: वाद को संस्थित किए जाने की अपेक्षाएं समरूप नहीं हैं। कुछ उच्च न्यायालयों द्वारा बनाए गए नियम यह अपेक्षा करते हैं कि वादपत्र एक ऐसे शपथपत्र द्वारा अनुसमर्थित हों जिसमें वादी के दावे की और उन दस्तावेजों को, जिन पर वह विश्वास करता है वास्तविकता का कथन हो, जब कि कुछ उच्च न्यायालयों द्वारा बनाए गए नियमों के अधीन ऐसा शपथपत्र अपेक्षित नहीं है। एकरूपता लाने और अभिवाकों को पूरा करने के लिए साधारण प्रक्रिया अधिकथित करने की दृष्टि से, खंड 2, संहिता की धारा 26 का संशोधन करता है और यह उपबंध करता है हर वादपत्र में तथ्य, शपथपत्र द्वारा साबित किए जाएं।

खंड 3—संहिता की धारा 27 का इस दृष्टि से संशोधन करता है कि प्रत्यर्थियों को सम्मन भेजने के लिए एक निश्चित समय सीमा अधिकथित की जाए। यह वाद के संस्थित किए जाने से तीस दिन का जिसके भीतर प्रत्यर्थियों को सम्मन भेजे जाने चाहिए, उपबंध करने के लिए है।

खंड 4—संहिता की धारा 32 के खंड (ग) में न्यायालय किसी व्यक्ति को न्यायालय में हाजिर होने के लिए विवश करने के प्रयोजन के लिए 500 रुपए से अनधिक जुर्माना अधिरोपित करने के लिए सशक्त है। खंड 4, उक्त धारा में उपबंध किए जाने के समय से अब तक रकम के मूल्य में कमी होने के कारण "पांच सौ रुपए" शब्दों के स्थान पर "पांच हजार रुपए" शब्द प्रतिस्थापित करता है।

खंड 5—संहिता की धारा 58 में, किसी डिक्री के निष्पादन में सिविल कारागार में किसी व्यक्ति को निरुद्ध करने और उससे उन्मोचित करने के लिए उपबंध है। चूंकि धारा 58 के उपबंध जिस समय किए गए थे तब से धन का मूल्य पर्याप्त रूप से कम हो गया है। इस दृष्टि से देखते हुए 5 खण्ड धारा 58 का संशोधन करने के लिए है और यह क्रमश: "एक हजार रुपए" और "पांच सौ रुपये" शब्दों के स्थान पर क्रमश : "पांच हजार रुपये" और "दो हजार रुपए" प्रतिस्थापित करता है।

खंड 6—संहिता की धारा 60 में किसी डिक्री के निष्पादन में संपत्ति की कुर्की और विक्रय के लिए उपबंध है। खंड 6 धारा 60 का, जिस समय उपबंध किया था तब से रकम के मूल्य में कमी होने के कारण "दो सौ पचास रुपए" शब्दों के स्थान पर "एक हजार रुपए" शब्द प्रतिस्थापित कर संशोधन करने के लिए है।

खंड 7—न्यायालय से बाहर विवादों को सुलझाने का उपबंध करता है। खंड 7 के उपबंध भारत के विधि आयोग और मालिमथ समिति द्वारा की गई सिफारिशों पर आधारित हैं। भारत के विधि आयोग द्वारा यह सुझाव दिया गया था कि न्यायालय पक्षकारों के बीच विवाद के शांतिपूर्ण समझौते पर पहुंचने की दृष्टि से वाद या कार्यवाही के किसी पक्षकार को व्यक्तिगत रूप से हाजिर कराने की अपेक्षा करे और पक्षकारों के बीच विवाद को शांतिपूर्वक सुलझाने का प्रयास करें। मालिमथ समिति ने न्यायालय के लिए यह आबद्धकर करने की सिफारिश की थी कि वे विवाद्यक विरचित किए जाने के पश्चात् विवाद को माध्यस्थम् सुलह या मध्यक्षेप न्यायिक समझौते द्वारा या लोक अदालत के माध्यम से सुलझाने के लिए निर्देशित करें। केवल तब ही जब कि पक्षकार अपने विवादों को किसी भी वैकल्पिक विवाद समाधान पद्धति के माध्यम से सुलझा पाने में असफल रहते हैं तो वाद में आगे कार्रवाई की जा सकेगी। उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, खंड 7 वैकल्पिक विवाद समाधान का उपबंध करने के लिए संहिता में एक नई धारा 89 अंत:स्थापित करने के लिए है।

खंड 8—संहिता की धारा 95 में, न्यायालय ऐसे मामले में जहां न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि गिरफ्तारी, कुर्की या व्यादेश दिया गया है और ऐसी गिरफ्तारी, कुर्की या व्यादेश का आवेदन अपर्याप्त आधार पर किया गया था और वाद संस्थित किए जाने का कोई युक्तियुक्त आधार नहीं था एक हजार रुपए से अनधिक प्रतिकर अधिनिर्णीत कर सकेगा। उक्त धारा की उपधारा (2) ऐसी गिरफ्तारी, कुर्की या व्यादेश के संबंध में प्रतिकर के लिए किसी दावे का वर्जन करती है यदि न्यायालय द्वारा उपधारा (1) के अधीन प्रतिकर के किसी आवेदन पर आदेश पारित किया जा चुका है। इस परिस्थिति में, खंड 8, "एक हजार रुपए" के स्थान पर "पचास हजार रुपए" शब्द प्रतिस्थापित करने के लिए है।

खंड 9—संहिता की धारा 96 मूल डिक्री से अपील के लिए उपबंध करती है क्योंकि जिस समय यह उपबंध किया गया था तब से धन का मूल्य पर्याप्त रूप से कम हो गया है और "तीन हजार रुपए" की धनीय सीमाओं का पुनरीक्षण किया जाना अपेक्षित है। अत: खंड 9, धारा 96 में "तीन हजार रुपए" शब्दों के स्थान पर "पच्चीस हजार रुपए" शब्द प्रतिस्थापित करने के लिए है।

खंड 10—न्यायमूर्ति मालिमथ समिति ने प्रथम अपील अधिकारिता का प्रयोग करने वाले एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध और अपील के मुद्दे की जांच की थी। समिति ने यह उपबंध करने की दृष्टि से कि इस निमित्त और अपील नहीं होगी, संहिता की धारा 100 क में उपयुक्त संशोधन करने की सिफारिश की थी। समिति ने संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के अधीन कार्यवाही में उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा किए गए विनिश्चय और आदेश के विरुद्ध खंड पीठ को अपील के उत्सादन के लिए संसद् के उपयुक्त अधिनियम के लिए सिफारिश की थी। खंड 10 यह उपबंध करने की दृष्टि से कि उपर्युक्त मामलों में और अपील नहीं होगी, एक नई धारा 100 क प्रतिस्थापित करने के लिए है।

खंड 11—संहिता की धारा 102 जब कि विषयवस्तु का परिमाण या मूल्य एक हजार रुपए से अधिक नहीं है तब द्वितीय अपील को रोकती है। न्यायमूर्ति मालिमथ समिति ने सिफारिश की कि जिस समय यह उपबंध किया गया था, तब से धन के मूल्यों में कमी होने के कारण "एक हजार रुपए" के स्थान पर "पच्चीस हजार रुपए" की सीमा प्रतिस्थापित करने के लिए धारा 102 में संशोधन किया जाए।

खंड 11—द्वितीय अपील रोकने के लिए "पच्चीस हजार रुपए" की सीमा रखने के लिए है।

खंड 12—संहिता की धारा 115 उच्च न्यायालय के किसी अधीनस्थ न्यायालय के किसी आदेश या विनिश्चय का ऐसे उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण करने के लिए उपबंध करता है। मालिमथ समिति ने इस बात पर विचार किया कि वह धन निचले न्यायालय के अभिलेख, पुनरीक्षण कार्यवाहियों में उच्च न्यायालय को भेजे जाते हैं यह आज्ञापरक है कि अधीनस्थ न्यायालय में लम्बित कार्यवाहियों के अभिलेख तब तक नहीं भेजे जाने चाहिए जब तक कि उच्च न्यायालय ऐसी वांछा न करे और पुनरीक्षण विचारण न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों के आस्थगन के रूप में परिवर्तित

नहीं होना चाहिए। समिति ने इस सिद्धांत पर सहमत होते हुए कि अंतर्वर्ती आदेशों के विरुद्ध हस्तक्षेपों का विस्तार निर्बन्धित होना चाहिए, यह महसूस किया कि उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण की शक्ति की मांग किए बिना उद्देश्य को अधिक प्रभावी रूप से अभिप्राप्त किया जा सकता है। खंड 12, धारा 115 उपयुक्त संशोधन द्वारा उक्त उद्देश्य को अभिप्राप्त करने के लिए है।

खंड 13—संहिता की धारा 148 न्यायालय द्वारा समय को बढ़ाए जाने के लिए उपबन्ध करती है। जहां न्यायालय ने इस संहिता द्वारा विहित या अनुज्ञात की गई कार्य करने के लिए कोई अवधि नियत या अनुदत्त की है, वही न्यायालय ऐसी अवधि को स्वविवेकानुसार बढ़ा सकेगा।

खंड 13—वाद के किसी पक्षकार की प्रेरणा पर प्रक्रियात्मक विलंब को न्यूनतम करने की दृष्टि से धारा 148 में ''कुल तीस दिन से अनधिक'' शब्दों को अंत:स्थापित करके ऐसी अवधि को बढ़ाए जाने पर एक सीमा रखने के लिए है।

खंड 14—संहिता के आदेश 4 में वादों के संस्थित किए जाने के लिए उपबंध है। आदेश 4 के नियम 7 के उपनियम (7) में यह कथन है कि प्रत्येक वाद न्यायालय को वादपत्र उपस्थित करके संस्थित किया जाएगा। चूंकि वादपत्र की एक प्रति न्यायालय के समक्ष भेजी जाती है और वादपत्र की द्वितीय प्रति अभिलेखों के लिए आवश्यक है। अत:, इस निमित्त खंड 14 द्वारा उपयुक्त संशोधन किए गए हैं जो यह अपेक्षा करते हैं कि वाद न्यायालय को वादपत्र की दो प्रतियां उपस्थित करके संस्थित किए जाएँ। उक्त आदेश के नियम 7 का उपनियम (2) न्यायालय की रजिस्ट्री द्वारा कतिपय औपचारिकताओं के पूरा किए जाने की अपेक्षा करता है। इन आशंकाओं को समाप्त करने की दृष्टि से कि वाद कब संस्थित किया गया समझा जाना चाहिए खंड 14 एक नया उपनियम (3) यह उपबंध अंत:स्थापित करने के लिए है कि वादपत्र तब तक सम्यक् रूप से संस्थित किया गया नहीं समझा जाएगा जब तक कि उपनियम (1) और उपनियम (2) में विनिर्दिष्ट अपेक्षाओं को वह पूरा नहीं करता है।

खंड 15—संहिता का आदेश 5 सम्मन जारी करने और तामील के लिए उपबंध करता है। मलिमथ समिति ने न्यायालय में बकाया मामलों की समस्या को देखा और संहिता में सिफारिशों की निश्चित समय सीमा, जिसके भीतर अभिवाक् पूरा किया जाना है, अधिकथित करने की दृष्टि से संशोधन की सिफारिश की थी। खंड 15 आदेश 5 के नियम 1 के उपखंड (1) को वाद के संस्थापन के दिन से तीस दिन के भीतर कुछ स्थितियों को छोड़कर, लिखित कथन फाइल करने के लिए उपबंध करने के लिए है। खंड 15 दिन यह सुनिश्चित करने के लिए नियम 2, नियम 6 और नियम 7 का संशोधन करता है कि ऐसे सभी दस्तावेजों के साथ, जिन पर वादी भरोसा करता है वादपत्र की प्रति प्रतिवादी को समन के साथ परिदत्त की जाती है। यह खंड शीघ्र डाक, कुरियर सेवा, फैक्स संदेश या इलैक्ट्रानिक डाक द्वारा सम्मनों के परिदान के लिए जैसा उच्च न्यायालय नियमों द्वारा विहित करे उपबंध करने के लिए नियम 9 को प्रतिस्थापित करता है यह समय की परिवर्तनशील आवश्यकताओं के साथ संहिता को अद्यतन बनाता है।

खंड 16—संहिता का आदेश 6 साधारणतया अभिवाकों के लिए उपबंध करता है। खंड 16 यह उपबंध करने के लिए है कि अभिवाकों का सत्यापन करने वाला व्यक्ति अपने अभिवाकों के समर्थन में एक शपथपत्र देगा। यह खंड आदेश 6 के नियम 5, नियम 17 और नियम 18 का संहिता में अन्य परिवर्तनों को संगत बनाने के लिए लोप करता है।

खंड 17—संहिता के आदेश 7 में नियम 14 उन दस्तावेजों के पेश किए जाने के लिए उपबंध करता है जिन पर वादी वाद लाता है। खंड 17 नियम 14 को यह उपबंध करने के लिए प्रतिस्थापित करता है कि जहां वादी अपने कब्जे में किसी दस्तावेज पर वाद लाता है, वहां वह ऐसी दस्तावेजों की सूची में प्रविष्टि करेगा और उन्हें न्यायालय में, जब वादपत्र उसके द्वारा परिदत्त किया जाता है, पेश करेगा और वादपत्र के साथ फाइल किया जाने वाला दस्तावेज और उसकी एक प्रति का परिदान करेगा। नया नियम आगे उपबंध करता है कि ऐसे मामलों में जहां वादपत्र के साथ दस्तावेज या उसकी प्रति फाइल नहीं की जाती है वहां उसे वाद की सुनवाई की वादी की ओर से साक्ष्य में प्राप्त किए जाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा।

खंड 18—संहिता का आदेश 8 लिखित कथन और मुजरे के लिए उपबंध करता है। खंड 18 आदेश 8 के नियम 1 को प्रतिस्थापित करने के लिए है जिससे कि उस नियत समय सीमा का उपबंध किया जा सके जिसके भीतर अभिवाकों को पूरा किया जाना है। नए उपबंध प्रतिवादी से प्रतिवादी पर समनों की तामील से तीस दिन के भीतर लिखित कथन पेश करने की अपेक्षा करते हैं। खंड 18 नियम 1क अंत:स्थापित करता है जिससे कि यह उपबंध किया जा सके कि उन दस्तावेजों को पेश करने का जिन पर अनुतोष का दावा किया जाता है या उसके द्वारा निर्भर किया जाता है, प्रतिवादी का कर्तव्य होगा। नियम 1क प्रतिवादी से अपेक्षा करता है कि वह न्यायालय में अपने कब्जे में के दस्तावेज पेश करे और दस्तावेज और उसकी प्रति का, जब लिखित कथन उसके द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, परिदान करे। नियम 1क आगे अपेक्षा करता है कि यदि किसी दस्तावेज या उसकी प्रति को लिखित कथन के साथ फाइल नहीं किया जाता है तो उसे वाद की सुनवाई पर प्रतिवादी की ओर से साक्ष्य में प्राप्त किए जाने के लिए अनुज्ञा नहीं दी जाएगी।

खंड 19—आदेश 9 के नियम 2 का प्रतिस्थापन किया जा रहा है जिससे इसका उपबन्ध किया जा सके कि जहां कोई व्यतिक्रम प्रतिवादी का सम्मनों का परिदान करने के लिए वादी की ओर से किया गया है वहां न्यायालय द्वारा वाद खारिज किया जाएगा। यह वादी द्वारा खर्चों के असंदाय के कारण वाद को खारिज करने के लिए एक आधार के रूप के अतिरिक्त है।

आदेश 9 के नियम 5 का संशोधन करके यह प्रस्थापना है कि उस अवधि को एक माह से कम करके सात दिन किया जा सके जिसके भीतर वादी से वहां नए सम्मन निकाले जाने के लिए आवेदन करने की अपेक्षा होगी जहां पूर्वतर निकाले गए सम्मन की तामील नहीं होती है।

खंड 20—आदेश 10 के संशोधन की प्रस्थापना उक्त आदेश में नियम 1क, 1ख और 1ग का अंत:स्थापन करने के लिए है। यह संशोधन विधेयक के खंड 7 द्वारा नई धारा 89 के अंत:स्थापन का परिणामिक है।

खंड 21—परिप्रश्नों के परिदान की इजाजत के लिए आवेदन का विनिश्चय करने के लिए समय सीमा नियत करके और इसका उपबंध करके कि पक्षकारों द्वारा दस्तावेजों का निरीक्षण विवाद्यकों के स्थिरीकरण के पहले ही किया जाएगा, आदेश 11 का नियम 2 और नियम 15 का संशोधन करने की प्रस्थापना है।

खंड 22—आदेश 12 के नियम 2 के संशोधन की प्रस्थापना उस समय को पन्द्रह दिन से कम करके सात दिन करने के लिए है जिसके भीतर दस्तावेजों की स्वीकृति के लिए सूचना वाद के किसी पक्षकार द्वारा दी जा सकेगी।

यह और कि उक्त आदेश के नियम 4 के दूसरे परन्तुक का लोप इसलिए किया जा रहा है कि किसी पक्षकार द्वारा उसके द्वारा की गई संस्वीकृतियों का संशोधन करने या प्रत्याहृत करने की अनुज्ञात करने के विषय में न्यायालय के विवेकाधिकार में कमी की जा सके।

खंड 23—आदेश 13 के नियम 1 और नियम 2 को प्रतिस्थापित किए जाने का प्रस्ताव है जिससे यह उपबंध किया जा सके कि उस दस्तावेज की मूल जिसकी प्रतियां वादपत्र और लिखित कथन के साथ फाइल की गई हैं, न्यायालय द्वारा विवाद्यकों के स्थिरीकरण किए जाने से पूर्व प्रस्तुत की जाएंगी।

खंड 24—आदेश 14 के नियम 4 का संशोधन किए जाने का प्रस्ताव है जिससे उस समय की सीमा नियत करके न्यायालय के विवेकाधिकार को निर्बन्धित किया जा सके जिसके परे साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा करने में कोई भी स्थगन न्यायालय द्वारा विवाद्यक विरचित किए जाने से पूर्व प्रदान नहीं किया जाएगा।

यह भी प्रस्ताव है कि नियम 5 का लोप किया जाए जिससे विवाद्यक नियत समय के भीतर विरचित किए जा सकें और न्यायालय द्वारा वादपत्र या लिखित कथन में संशोधन करने के लिए कोई आवेदन ग्रहण नहीं किया जाएगा।

खंड 25—आदेश 16 का संशोधन करने का प्रस्ताव है जिससे कि वह समय सीमा नियत की जा सके जिसके भीतर साक्षी को सम्मन करने के लिए आवेदन किया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त, यह उपबंध करने का प्रस्ताव है कि समन के लिए आवेदन करने वाला पक्षकार समन की अपेक्षा करने मद्दे फीस का उस अवधि के भीतर, जो आवेदन करने की तारीख से सात दिन के अपश्चात् हो, संदाय करेगा।

खंड 26—आदेश 17 स्थगन अनुदत्त करने के लिए प्रक्रिया अधिकथित करता है। अधीनस्थ विधान संबंधी समिति (11वीं लोक सभा) ने यह सिफारिश की कि स्थगन मामलों तथा विरोधी पक्षकार के पक्ष में स्थगन चाहने वाले पक्षकार के विरुद्ध वास्तविक न कि केवल मीमांसात्मक खर्चे देने के लिए निर्णय में कारणों को अभिलिखित करने को आबद्धकर बनाया जाना चाहिए। यह प्रस्ताव है कि उसे प्रस्तावित आदेश का संशोधन करके बाध्यकर बनाया जाए। यह प्रस्ताव है कि न्यायाधीशों के लिए कारणों को लिखित रूप में अभिलिखित करना, जहां न्यायालय स्थगन अनुदत्त करता है, और विरोधी पक्षकार को वास्तविक खर्चे देना आबद्धकर बनाया जाए। इसके अतिरिक्त, किसी मामले में तीन स्थगन तक की सीमा भी नियत की गई है।

खंड 27—आदेश 18 में साक्ष्य के अभिलेखन की रीति का उपबंध है। यह प्रस्ताव है कि कमिश्नर द्वारा, जिसकी नियुक्ति न्यायालय द्वारा की जाएगी, साक्ष्य के अभिलेखन की शक्ति प्रदत्त की जाए।

खंड 28—आदेश 20 अपील फाइल करने वाले पक्षकार के लिए अपील के ज्ञापन की डिक्री की प्रमाणित प्रति उपाबद्ध करने के लिए अनिवार्य बनाता है। न्यायमूर्ति मलिमथ समिति ने यह ध्यान दिलाया कि डिक्री की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने में बहुत समय लगता है और इस प्रकार अपील फाइल करने में बहुत समय लगता है। यह प्रस्ताव है कि अपील के ज्ञापन के साथ डिक्री की प्रमाणित प्रति उपाबद्ध करने से भी अभिमुक्ति दी जाए और यह भी प्रस्ताव है कि संपूर्ण निर्णय पक्षकारों को निर्णय सुनाए जाने के ठीक पश्चात् उपलब्ध करा दिया जाएगा।

खंड 29—आदेश 26 न्यायालय को केवल ऐसे मामलों में कमीशन निकालने में समर्थ बनाता है जिसमें साक्षी न्यायालय की अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं से बाहर निवास करता है। यह प्रस्ताव है कि आदेश 26 का एक नया नियम 4क अंत:स्थापित करके संशोधन किया जाए जिससे कि न्यायालय किसी भी ऐसे मामले में कमीशन निकाल सके जिसमें न्याय के हित में ऐसी मांग हो।

खंड 30—यह देखा गया है कि अस्थायी व्यादेश प्राप्त करने के पश्चात् वह पक्षकार, जिसके पक्ष में व्यादेश अनुदत्त किया गया है, तुच्छ और अनुपयुक्त आधारों पर मामलों के निपटारों में विलंब उत्पन्न करता है। इस पद्धति पर नियंत्रण करने के लिए, यह प्रस्ताव है कि आदेश 39 का संशोधन किया जाए जिससे कि यह उपबंध किया जा सके कि वह पक्षकार, जो व्यादेश प्राप्त करने के लिए आवेदन करता है, प्रतिभूति देगा जिससे कि मामले के विचारण के दौरान विलंबकारी युक्ति न अपना सके।

खंड 31—एक नया आदेश 39क अंत:स्थापित करने के लिए है। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के विद्यमान उपबंधों के अधीन अन्तिम व्यादेश के लिए आवेदन तब तक प्रस्तावित नहीं किया जा सकता जब तक कि वाद सबसे पहले सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय में फाइल नहीं

कर दिया जाता। विशिष्टतया संपत्ति विवादों से संबंधित मामलों में यह किसी व्यक्ति की सहायता कर सकता है यदि ऐसा कोई व्यक्ति सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय को संपत्ति की वास्तविक हैसियत अभिनिश्चित करने के लिए कमीशन की नियुक्ति के लिए आवेदन कर सकता हो जिससे कि नियमित वाद फाइल करने के समय कमिश्नर की रिपोर्ट संपत्ति की वास्तविक हैसियत के संबंध में उपलब्ध हो जाए।

खंड 32—पहली अनुसूची के आदेश 41 का संशोधन करने का प्रस्ताव करता है जिससे कि डिक्री की प्रति प्राप्त करने में लगने वाले अधिक समय के कारण विलम्ब से बचने के लिए निर्णय की प्रति के आधार पर ही अपील फाइल करने के लिए उपबंध किया जा सके। विलम्ब से बचने के लिए यह प्रस्ताव किया जाता है कि कोई भी अपील उसी न्यायालय में फाइल की जा सकेगी जिसने निर्णय पारित किया हो और वह न्यायालय पक्षकारों को अपील न्यायालय के समक्ष उपसंजात होने का निर्देश देगा।

खंड 33—इस खंड द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1997 के प्रारंभ के पूर्व विधान मंडलों और उच्च न्यायालयों द्वारा संहिता में किए गए सभी संशोधनों को, वहां तक के सिवाय जहां तक वे इस अधिनियम के उपबंधों के संगत है, निरसित किया जा रहा है। व्यावृत्ति संबंधी उपबंध को यह सुनिश्चित करने के लिए व्यापक रूप से आशयित हैं कि इन धाराओं द्वारा किए गए संशोधन यह सुनिश्चित करने के लिए व्यापक रूप से आशियित हैं कि उपधारा (2) में वर्णित धाराओं द्वारा किए गए संशोधनों का उन कार्यवाहियों की बाबत लाभ नहीं उठाया जाएगा जो सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1997 के प्रारंभ पर लंबित है।

खंड 34—(परिसीमा अधिनियम, 1963 का संशोधन)

परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 12 की उपधारा (3) उस निर्णय की प्रति अभिप्राप्त करने के लिए जिस पर डिक्री या आदेश आधारित है, अपेक्षित समय को परिसीमा प्रयोजनों के लिए अपवर्जित करती है। जैसा कि अधिनियम के खंड 28 और खंड 32 में यह प्रस्ताव है कि निर्णय की प्रति निर्णय सुनाए जाने के समय परिदत्त की जाएगी और अपील फाइल करने के लिए वह पर्याप्त है इसलिए पारिणामिक प्रकृति के संशोधन "जिस पर डिक्री या आदेश आधारित है" शब्दों का लोप करते हुए पूर्वोक्त उपधारा के अधीन किए जा रहे हैं।

खंड 35—(न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 का संशोधन)

प्रस्तावित संशोधन सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में नई धारा 89 का पारिणामिक संशोधन है जो विधेयक के खंड 7 द्वारा अंत:स्थापित किए जाने का प्रस्ताव है जिससे उस मामले में जिसमें विवाद का विषय न्यायालय के बाहर तय किया जाता है, न्यायालय फीस वापस लेने का दावा करने के लिए वह पक्ष समर्थ हो सके।

खंड 36—न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 की अनुसूची का संशोधन।

प्रस्तावित संशोधन विधेयक के खंड 31 द्वारा अंत:स्थापित किए जाने के लिए प्रस्तावित पहली अनुसूची में आदेश 39क के अंत:स्थापन के लिए पारिणामिक संशोधन है।

प्रत्यायोजित विधान के बारे में ज्ञापन

धारा 89 की उपधारा (2) का खंड (घ) जो विधेयक के खंड 7 द्वारा अंत:स्थापन किए जाने के लिए है सरकार और उच्च न्यायालयों को पक्षकारों के बीच सुलह कराने के लिए मध्यस्थता कार्यवाहियों में अनुसरण किए जाने वाले नियम बनाने के लिए सशक्त करता है।

आदेश 5 का नियम 9 और नियम 9क, जो विधेयक के खंड 15 द्वारा प्रतिस्थापन के लिए है। ये उच्च न्यायालयों को सम्मनों की तामील करने के प्रयोजन के लिए कुरियर सेवा का अनुमोदन करने के लिए सशक्त करते हैं और सम्मनों की तामील के अन्य साधनों की बाबत भी नियम बनाने के लिए सशक्त करते हैं।

आदेश 18 का नियम 4 जो विधेयक के खंड 27 द्वारा प्रस्थापन के लिए है, उच्च न्यायालयों को साक्ष्य के अभिलेखन के लिए कमिश्नर को संदत्त की जाने वाली राशियों और न्यायालय द्वारा या पक्षकारों द्वारा कमिश्नर को संदेय रकम का उपबंध नियमों द्वारा करने के लिए सशक्त करता है।

आदेश 20 का नियम 6ख, जो विधेयक के खंड 28 के द्वारा प्रतिस्थापन के लिए है, उच्च न्यायालयों को निर्णय की प्रति के प्रदाय के लिए पक्षकारों द्वारा भारों को संदत्त किए जाने के संबंध में नियम बनाने के लिए सशक्त करता है।

वे विषय जिनके संबंध में ऐसे आदेश किए जा सकेंगे या नियम बनाए जा सकेंगे, ब्यौरे के विषय हैं और उनका विधेयक में उपबंध करना कठिन है। अत: विधायी शक्तियों का प्रत्यायोजन सामान्य प्रकृति का है।

उपाबन्ध

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 से उद्धरण

(1908 का 5)

* * * * *

वादों का संस्थित किया जाना

26. वादों का संस्थित किया जाना—हर वाद वादपत्र को उपस्थित करके, या ऐसे अन्य प्रकार से, जैसा विहित किया जाए, संस्थित किया जाएगा।

सम्मन और प्रकटीकरण

27. प्रतिवादियों को सम्मन—जहां कोई वाद सम्यक् रूप से संस्थित किया जा चुका है वहां उपसंजात होने और दावे का उत्तर देने के लिए सम्मन प्रतिवादी के नाम से निकाला जा सकेगा और उसकी तामील विहित रीति से की जा सकेगी।

* * * * *

32. **व्यतिक्रम के लिए शास्ति**—न्यायालय किसी ऐसे व्यक्ति को जिसके नाम धारा 30 के अधीन सम्मन निकाला गया है, हाजिर होने के लिए विवश कर सकेगा और उस प्रयोजन के लिए—

* * * * *

(ग) उसके ऊपर पांच सौ रुपये से अनधिक जुर्माना अधिरोपित कर सकेगा ;

* * * * *

58. **निरोध और छोड़ा जाना**—(1) डिक्री के निष्पादन में सिविल कारागार में निरुद्ध हर व्यक्ति,—

(क) जहां डिक्री एक हजार रुपए से अधिक धनराशि का संदाय करने के लिए है वहां तीन मास से अनधिक अवधि के लिए, और

(ख) जहां डिक्री पांच सौ रुपए से अधिक किन्तु एक हजार रुपए से अनधिक धनराशि का संदाय करने के लिए है वहां छह सप्ताह से अनधिक अवधि के लिए,

ऐसे निरुद्ध किया जाएगा :

परन्तु वह ऐसे निरोध में से—

(i) उसके निरोध के वारण्ट में वर्णित रकम का सिविल कारागार के भारसाधक अधिकारी को संदाय कर दिए जाने पर, अथवा

(ii) उसके विरुद्ध डिक्री के अन्यथा पूर्ण रूप से तुष्ट हो जाने पर, अथवा

(iii) जिस व्यक्ति के आवेदन पर वह ऐसे निरुद्ध किया गया था उसके अनुरोध पर, अथवा

(iv) जिस व्यक्ति के आवेदन पर उसे निरुद्ध किया गया था उसके द्वारा जीवन-निर्वाह भत्ते का संदाय करने का लोप किए जाने पर निरोध की उक्त अवधि के अवसान से पहले छोड़ दिया जाएगा :

परन्तु यह भी कि वह खण्ड (ii) या खण्ड (iii) के अधीन ऐसे निरोध में से न्यायालय के आदेश के बिना नहीं छोड़ा जाएगा।

(1क) शंकाओं को दूर करने के लिए यह घोषित किया जाता है कि जहां डिक्री की कुल रकम पांच सौ रुपए से अधिक नहीं है वहां धन के संदाय की डिक्री के निष्पादन में निर्णीत-ऋणी को सिविल कारागार में निरुद्ध करने के लिए कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

* * * * *

कुर्की

60. संपत्ति, जो डिक्री के निष्पादन में कुर्क और विक्रय की जा सकेगी—(1) निम्नलिखित सम्पत्ति डिक्री के निष्पादन में कुर्क और विक्रय की जा सकेगी अर्थात् भूमि, गृह या अन्य निर्माण, माल धन बैंक-नोट चैक, विनिमय पत्र, हुण्डी, वचनपत्र, सरकारी प्रतिभूतियां, धन के लिए बन्धपत्र या अन्य प्रतिभूतियां, ऋण, निगम-अंश और उसके सिवाय जैसा इसमें इसके पश्चात् वर्णित है, विक्रय की जा सकने वाली अन्य ऐसी सभी जंगम या स्थावर सम्पत्ति, जो निर्णीत-ऋणी की है या जिस पर या जिसके लाभों पर वह ऐसी व्ययन शक्ति रखता है जिसे वह अपने फायदे के लिए प्रयोग कर सकता हो, चाहे वह निर्णीत-ऋणी के नाम में धारित हो या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसके लिए न्यास में या उसकी ओर से धारित हो :

परन्तु निम्नलिखित विशिष्ट वस्तुएं, ऐसे कुर्क और विक्रय नहीं की जा सकेंगी, अर्थात् :—

* * * * *

(झ) भरणपोषण की डिक्री से भिन्न किसी डिक्री के निष्पादन में वेतन के प्रथम चार सौ रुपए और बाकी का दो-तिहाई :

परन्तु जहां ऐसे वेतन के प्रभाग का जो कुर्क किया जा सकता है, कोई भाग कुल मिलाकर चौबीस मास की अवधि तक लगातार या आंतरायिक रूप से कुर्क रहा है वहां जब तक आगे की बारह मास की अवधि समाप्त न हो जाए तब तक ऐसे भाग की कुर्की से छूट प्राप्त होगी और जहां ऐसी कुर्की एक ही डिक्री के निष्पादन में की गई है वहां कुल मिलाकर चौबीस मास की अवधि तक कुर्की चालू रहने के पश्चात्, ऐसे भाग को उस डिक्री के निष्पादन में कुर्की से अन्तिम रूप से छूट प्राप्त होगी।

* * * * *

95. अपर्याप्त आधारों पर गिरफ्तारी, कुर्की या व्यादेश अभिप्राप्त करने के लिए प्रतिकर—(1) जहां किसी वाद में, जिसमें इसके ठीक पहले की धारा के अधीन कोई गिरफ्तारी या कुर्की कर ली गई है या अस्थायी व्यादेश दिया है—

(क) न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि ऐसी गिरफ्तारी, कुर्की या आदेश के लिए आवेदन अपर्याप्त आधारों पर दिया गया था, अथवा

(ख) वादी का वाद असफल हो जाता है और न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि उसके संस्थित किए जाने के लिए कोई युक्तियुक्त या अधिसंभाव्य आधार नहीं था,

वहां प्रतिवादी न्यायालय से आवेदन कर सकेगा और न्यायालय ऐसे आवेदन पर अपने आदेश द्वारा एक हजार रुपए से अनधिक इतनी रकम वादी के विरुद्ध अधिनिर्णीत कर सकेगा जितना वह प्रतिवादी के लिए उसके द्वारा किए गए व्यय के लिए या उसे हुई क्षति के लिए जिसके अन्तर्गत प्रतिष्ठा की हुई क्षति में भी है युक्तियुक्त प्रतिकर समझे :

परन्तु न्यायालय, अपनी धन-संबंधी अधिकारिता की परिसीमाओं से अधिक रकम इस धारा के अधीन अधिनिर्णीत नहीं करेगा।

* * * * *

भाग 7

अपीलें

मूल डिक्रियों की अपीलें

96. (1) * * * * *

(4) लघुवाद न्यायालय द्वारा संज्ञेय वाद में किसी डिक्री से कोई अपील, यदि ऐसी डिक्री की रकम या उसका मूल्य तीन हजार रुपए से अधिक नहीं है तो, केवल विधि के प्रश्न के संबंध में ही होगी।

* * * * *

100क. **कुछ मामलों में आगे अपील का न होना**—किसी उच्च न्यायालय के लिए किसी लेटर्स पेटेन्ट में या विधि का बल रखने वाली किसी अन्य लिखित में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी अपील डिक्री या आदेश की अपील की सुनवाई और उसका विनिश्चय उच्च न्यायालय के किसी एकल न्यायाधीश द्वारा किया जाता है वहां ऐसी अपील में ऐसे एकल न्यायाधीश के निर्णय, विनिश्चय या आदेश की अथवा ऐसी अपील में पारित डिक्री की आगे कोई अपील नहीं होगी।

* * * * *

102. **कतिपय वाद, में द्वितीय अपील का न होना**—लघुवाद न्यायालय द्वारा संज्ञेय प्रकृति के किसी भी वाद में, जबकि "विषय वस्तु का परिणाम या मूल्य तीन हजार रुपए से अधिक नहीं है", कोई भी द्वितीय अपील नहीं होगी।

* * * * *

पुनरीक्षण—115. (1) उच्च न्यायालय किसी भी ऐसे मामले के अभिलेख को मंगवा सकेगा जिसका ऐसे उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय ने विनिश्चय किया है और जिसकी कोई भी अपील नहीं होती है और यदि वह प्रतीत होता है कि—

(क) ऐसे अधीनस्थ न्यायालय ने ऐसी अधिकारिता का प्रयोग किया है जो उसमें विधि द्वारा निहित नहीं है, अथवा

(ख) ऐसा अधीनस्थ न्यायालय ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा है जो इस प्रकार निहित है, अथवा

(ग) ऐसे अधीनस्थ न्यायालय ने अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने में अवैध रूप से या तात्विक अनियमितता से कार्य किया है,

तो उच्च न्यायालय उस मामले में ऐसा आदेश कर सकेगा जो वह ठीक समझे :

परन्तु उच्च न्यायालय, किसी वाद या अन्य कार्यवाही के अनुक्रम में इस धारा के अधीन किए गए किसी आदेश में या कोई विवाद्यक विनिश्चित करने वाले किसी आदेश में तभी फेरफार करेगा या उसे उलटेगा जब—

(क) ऐसा आदेश यदि वह पुनरीक्षण के लिए आवेदन करने वाले पक्षकार के पक्ष में किया गया होता तो वाद या अन्य कार्यवाही का अंतिम रूप से निपटारा कर देता, अथवा

(ख) ऐसा आदेश यदि रहने दिया गया तो, न्याय नहीं हो पाएगा अथवा उस पक्षकार को जिसके विरुद्ध वह किया गया था, ऐसी क्षति पहुंचेगी जिसकी हानिपूर्ति नहीं हो सकती।

(2) उच्च न्यायालय इस धारा के अधीन किसी ऐसे डिक्री या आदेश में, जिसके विरुद्ध या तो उच्च न्यायालय में या उसके अधीनस्थ किसी न्यायालय में अपील होती है, फेरफार नहीं करेगा अथवा उसे नहीं उलटेगा।

स्पष्टीकरण—इस धारा में "ऐसे मामले के अभिलेख को मंगवा सकेगा जिसके ऐसे उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय ने विनिश्चय किया है" अभिव्यक्ति के अन्तर्गत किसी वाद या अन्य कार्यवाही के अनुक्रम में किया गया कोई आदेश या कोई विवाद्यक विनिश्चित करने वाला कोई आदेश भी है।

148. जहां न्यायालय ने इस संहिता द्वारा विहित या अनुज्ञात कोई कार्य करने के लिए कोई अवधि नियत या प्रदत्त की है वहां न्यायालय ऐसी अवधि को स्व-विवेकानुसार समय-समय पर बढ़ा सकेगा यद्यपि पहले नियत या अनुदत्त अवधि का अवसान हो चुका हो।

आदेश 4

वादों का संस्थित किया जाना

1. **वादपत्र द्वारा वाद प्रारंभ होना (1)**—हर वाद न्यायालय को या उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त किसी अधिकारी को वादपत्र उपस्थित करके संस्थित किया जाएगा।

* * * * *

आदेश 5

सम्मनों का निकाला जाना और उनकी तामील

सम्मन का निकाला जाना

1. **समन (1)**—जब वाद सम्यक् रूप से संस्थित किया जा चुका हो तब सम्मन में विनिर्दिष्ट किए जाने वाले दिन को उपसंजात होने और दावे का उत्तर देने के लिए सम्मन प्रतिवादी के नाम निकाला जाएगा :

परन्तु जब प्रतिवादी वादपत्र के उपस्थित किए जाने पर ही उपसंजात हो जाए और वादी का दावा स्वीकार कर ले तब ऐसा कोई सम्मन नहीं निकाला जाएगा :

परन्तु यह और कि जहां सम्मन निकाला गया है वहां न्यायालय प्रतिवादी को उसकी उपसंजाति की तारीख पर अपनी प्रतिरक्षा का लिखित कथन, यदि कोई हो, फाइल करने का निदेश दे सकेगा और सम्मन में इस आशय की प्रविष्टि कराएगा।

* * * * *

2. **सम्मनों से उपाबद्ध प्रति या कथन**—हर सम्मन के साथ वादपत्र की एक प्रति या यदि ऐसा अनुज्ञात किया गया हो तो, एक संक्षिप्त कथन होगा।

* * * * *

6. **प्रतिवादी की उपसंजाति के लिए दिन नियत किया जाना**—प्रतिवादी की उपसंजाति के लिए दिन, न्यायालय के चालू कारबार, प्रतिवादी के निवास स्थान और सम्मन की तामील के लिए आवश्यक समय के प्रति निर्देश से नियत किया जाएगा और वह दिन ऐसे नियम किया जाएगा कि प्रतिवादी को ऐसे दिन उपसंजात होने और उत्तर देने को समर्थ होने के लिए पर्याप्त समय मिल जाए।

7. **सम्मन प्रतिवादी को यह आदेश देगा कि वह वे दस्तावेजें पेश करे जिन पर वह निर्भर करता है**—उपसंजाति और उत्तर के लिए सम्मन में प्रतिवादी को आदेश होगा कि वह अपने कब्जे या शक्ति में की ऐसी सब दस्तावेजों को पेश करे जिन पर अपने मामले के समर्थन में निर्भर करने का उसका आशय है।

* * * * *

सम्मन की तामील

9. (1) **तामील के लिए सम्मन का परिदान या पारेषण**—जहां प्रतिवादी उस न्यायालय की अधिकारिता के भीतर निवास करता है जिसमें वाद संस्थित किया गया है या उस अधिकारिता के भीतर निवास करने वाला उसका ऐसा अभिकर्ता है जो सम्मन की तामील का प्रतिग्रहण करने के लिए सशक्त है, वहां जब तक कि न्यायालय अन्यथा निदेश न करे सम्मन उचित अधिकारी को उसके द्वारा या उसके अधीनस्थों में से एक के द्वारा तामील किए जाने के लिए परिदत्त किया या भेजा जाएगा।

(2) उचित अधिकारी उस न्यायालय से जिसमें वाद संस्थित किया गया है भिन्न किसी न्यायालय का अधिकारी हो सकेगा और जहां वह ऐसा अधिकारी है वहां सम्मन उसे डाक द्वारा या ऐसी अन्य रीति से भेजा जा सकेगा जो न्यायालय निर्दिष्ट करे।

* * * * *

19क. **वैयक्तिक तामील के अतिरिक्त डाक द्वारा तामील के लिए सम्मन का एक साथ जारी किया जाना**—(1) न्यायालय नियम 9 से नियम 19 तक में (जिनमें ये दोनों नियम सम्मिलित हैं) उपबन्धित रीति से तामील करने के लिए सम्मन निकालने के साथ ही साथ यह भी निदेश देगा कि सम्मन की तामील प्रतिवादी को, या तामील का प्रतिग्रहण करने के लिए सशक्त उसके अभिकर्ता को सम्बोधित रसीदी रजिस्ट्री डाक द्वारा उस स्थान पर की जाए जहां प्रतिवादी या उसका अभिकर्ता वास्तव में और स्वेच्छा से निवास करता है या कारबार करता है या अभिलाभ के लिए स्वयं काम करता है :

परन्तु जहां मामले की परिस्थितियों में न्यायालय इसे अनावश्यक समझता है वहां इस उपनियम की कोई बात न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं करेगी कि वह रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा तामील करने के लिए सम्मन निकाले।

(2) जहां न्यायालय प्रतिवादी या उसके अभिकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित होने का तात्पर्य रखने वाली अभिस्वीकृति प्राप्त करता है या जहां न्यायालय उस डाक वस्तु को जिसमें सम्मन है, ऐसे पृष्ठांकन के साथ वापस प्राप्त करता है, जो डाक कर्मचारी द्वारा इस आशय से किया गया तात्पर्यित है कि प्रतिवादी या उसके अभिकर्ता ने उस डाक वस्तु को जिसमें सम्मन है, निविदत्त किए जाने पर ग्रहण करने से इंकार कर दिया था तो सम्मन निकालने वाला न्यायालय यह घोषणा करेगा कि प्रतिवादी पर समन की सम्यक् रूप से तामील की गई थी :

परन्तु जहां सम्मन उचित रूप से पता लिखकर उस पर पूर्व संदाय करके और रजिस्ट्री डाक द्वारा सम्यक् रूप से भेजा गया था, वहां इस उपनियम में निर्दिष्ट घोषणा इस तथ्य के होते हुए भी की जाएगी कि अभिस्वीकृति हो जाने, इधर-उधर हो जाने या किसी अन्य कारण से सम्मन निकालने की तारीख से 30 दिन के भीतर न्यायालय को प्राप्त नहीं हुई है।

* * * * *

21. **जहां प्रतिवादी किसी अन्य न्यायालय की अधिकारिता के भीतर निवास करता है वहां सम्मन की तामील**—सम्मन को यह न्यायालय, जिसने उसे निकाला है, अपने अधिकारियों में से किसी के द्वारा या डाक द्वारा राज्य के भीतर या बाहर ऐसे किसी न्यायालय को भेज सकेगा (जो उच्च न्यायालय न हो) जिसकी उस स्थान में अधिकारिता है जहां प्रतिवादी निवास करता है।

* * * * *

24. **कारागार में प्रतिवादी पर तामील**—जहां प्रतिवादी कारागार में परिरुद्ध है वहां सम्मन कारागार के भारसाधक अधिकारी को प्रतिवादी पर तामील के लिए परिदत्त किया जाएगा या डाक द्वारा या अन्यथा भेजा जाएगा।

25. **वहां तामील, जहां प्रतिवादी भारत के बाहर निवास करता है और उसका कोई अभिकर्ता नहीं है**—जहां प्रतिवादी भारत के बाहर निवास करता है और उसका भारत में ऐसा कोई अभिकर्ता नहीं है जो तामील प्रतिगृहीत करने के लिए सशक्त है वहां, यदि ऐसे स्थान और उस स्थान के बीच जहां न्यायालय स्थित है, डाक द्वारा संचार है तो, सम्मन उस प्रतिवादी को उस स्थान के पते पर, जहां वह निवास कर रहा है, डाक द्वारा भेजा जाएगा।

परन्तु जहां कि ऐसा प्रतिवादी बंगलादेश या पाकिस्तान में निवास करता है वहां सम्मन अपनी एक प्रति सहित प्रतिवादी पर तामील के लिए उस देश के किसी ऐसे न्यायालय को भेजा जा सकेगा (जो कि उच्च न्यायालय नहीं है) और जिसका उस स्थान में क्षेत्राधिकार है जहां कि प्रतिवादी निवास करता है :

परन्तु जहां कि प्रतिवादी बंगलादेश या पाकिस्तान का लोकपदाधिकारी है (यथा स्थिति बंगलादेश की या पाकिस्तानी सेना, नौसेना या वायुसेना का नहीं है) या उस देश की रेल सेवायें या स्थानीय प्राधिकारी का सेवक है वहां सम्मन तामील हेतु ऐसे किसी पदाधिकारी के पास भेजा जा सकेगा जिसे कि केन्द्रीय सरकार राजकीय गजट में अधिसूचना द्वारा इस निमित्त उल्लिखित करे।

* * * * * * *

आदेश 6

अभिवचन साधारणतः

5. **अतिरिक्त और अधिक अच्छा कथन या विशिष्टियां.**—दावे या प्रतिरक्षा की प्रकृति का अतिरिक्त और अधिक अच्छा कथन करने या किसी अभिवचन में कथित किसी बात को अतिरिक्त और अधिक अच्छी विशिष्टियां देने का आदेश खर्चे और अन्य बातों के बारे में ऐसे निबंधनों पर दिया जा सकेगा जो न्याय संगत हों।

* * * * * * *

17. **अभिवचन का संशोधन.**—न्यायालय दोनों में से किसी भी पक्षकार को कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम में अनुज्ञा दे सकेगा कि वह अपने अभिवचनों को ऐसी रीति से और ऐसे निबंधनों पर, जो न्यायसंगत हों, परवर्तित करे या संशोधित करे और सभी ऐसे संशोधन किए जाएंगे जो पक्षकारों के बीच में विवादग्रस्त वास्तविक प्रश्नों के अवधारण के प्रयोजन के लिए आवश्यक हों।

18. **आदेश के पश्चात् संशोधन करने में असफल रहना.**—यदि कोई पक्षकार, जिसने संशोधन करने की इजाजत के लिए आदेश प्राप्त कर लिया है, उस आदेश द्वारा उस प्रयोजन के लिए परिसीमित समय के भीतर या यदि उसके द्वारा कोई समय परिसीमित नहीं किया गया है तो, आदेश की तारीख से चौदह दिन के भीतर तद्नुसार संशोधन नहीं करता है तो जब तक कि न्यायालय द्वारा समय बढ़ा न दिया जाए उसे, यथास्थिति, यथापूर्वोक्त परिसीमित समय के या ऐसे चौदह दिन के अवसान के पश्चात् संशोधन करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा।

* * * * * * *

आदेश 7

वादपत्र

9. **वादपत्र ग्रहण करने पर प्रक्रिया—संक्षिप्त कथन.**—(1) यदि वादी द्वारा कोई दस्तावेजें वादपत्र के साथ पेश की गई हैं तो वादी ऐसे पेश की गई दस्तावेजों की सूची वादपत्र में पृष्ठांकित करेगा या वादपत्र के साथ उपाबद्ध करेगा और यदि वादपत्र ग्रहण कर लिया जाता है तो वादपत्र की सादा कागज पर इतनी प्रतियां जितने प्रतिवादी हैं ऐसे समय के भीतर जो न्यायालय द्वारा नियत किया जाए या उसके द्वारा समय-समय पर बढ़ाया जाए, उस दशा के सिवाय उपस्थित करेगा जिसमें न्यायालय ने वादपत्र की लम्बाई या प्रतिवादियों की संख्या के कारण से या किसी अन्य पर्याप्त कारण से उसे यह अनुज्ञा दे दी हो कि वह किए गए दावे की या उस अनुतोष की, जिसका दावा बाद में किया गया है, प्रकृति के संक्षिप्त कथन उतनी ही संख्या में उपस्थित कर दे और उस दशा में वह ऐसे कथन उपस्थित करेगा।

(1क) वादी, उपनियम (1) के अधीन न्यायालय द्वारा नियत किए गए या उसके द्वारा बढ़ाए गए समय के भीतर प्रतिवादियों पर सम्मन की तामील के लिए अपेक्षित फीस का संदाय करेगा।

(2) जहां प्रतिनिधि की हैसियत से वादी वाद लाता है या प्रतिवादी या प्रतिवादियों में से किसी पर वाद लाया जाता है वहां ऐसे कथन यह दर्शित करेंगे कि किस हैसियत में वादी वाद लाया है या प्रतिवादी पर वाद लाया गया है।

(3) ऐसे कथनों को वादपत्र के अनुरूप करने के लिए वादी न्यायालय की इजाजत से संशोधित कर सकेगा।

(4) यदि न्यायालय का मुख्य लिपिकवर्गीय अधिकारी ऐसी सूची और प्रतियों या कथनों की परीक्षा करने पर उन्हें सही पाए तो वह उन्हें हस्ताक्षरित करेगा।

* * * * * * *

वे दस्तावेजें जिन पर वादपत्र निर्भर किया गया है

14. जिस दस्तावेज के आधार पर वादी वाद लाता है उसका पेश किया जाना.—(1) जहां वादी अपने कब्जे या शक्ति में की दस्तावेज के आधार पर वाद लाता है वहां वादपत्र उपस्थित किए जाने के समय वह उसे न्यायालय में पेश करेगा और उसी समय दस्तावेज को या उसकी प्रति को वादपत्र के साथ फाइल किए जाने के लिए परिदत्त करेगा।

(2) अन्य दस्तावेजों की सूची.—जहां वह, अपने दावे के समर्थन में साक्ष्य के रूप में किन्हीं अन्य दस्तावेजों पर निर्भर करता है (चाहे वे उसके कब्जे या शक्ति में हों या नहीं) वहां वह ऐसी दस्तावेजों को ऐसी सूची में प्रविष्ट करेगा जो वादपत्र में जोड़ी जानी है या वादपत्र के साथ उपाबद्ध की जानी है।

15. दस्तावेजें वादी के कब्जे या शक्ति में न होने की दशा में कथन.—जहां ऐसी कोई दस्तावेज वादी के कब्जे या शक्ति में नहीं है वहां, यदि संभव हो तो, वह यह कथन करेगा कि वह किसके कब्जे या शक्ति में है।

* * * * * * *

18. वादपत्र फाइल करते समय पेश न की गई दस्तावेज की अग्राह्यता.—(1) जो दस्तावेज वादपत्र उपस्थित किए जाने के समय न्यायालय में वादी द्वारा पेश की जानी चाहिए थी, या उस सूची में प्रविष्ट की जानी चाहिए थी जो वादपत्र जोड़ी जाती है या वादपत्र से उपाबद्ध की जाती है और जो तदनुसार पेश या प्रविष्ट नहीं की गई है उसे वाद की सुनवाई में न्यायालय, की इजाजत के बिना, उसकी ओर से साक्ष्य में प्रस्तुत नहीं किया जाएगा।

* * * * * * *

आदेश 8

लिखित कथन, मुजरा और प्रतिदावा

1. लिखित कथन.—(1) प्रतिवादी अपनी प्रतिरक्षा का लिखित कथन पहली सुनवाई के समय या उसके पहले या इतने समय के भीतर जितना न्यायालय अनुज्ञात करे, उपस्थित करेगा।

(2) उसके सिवाय जैसा नियम 8क में उपबन्धित है, जहां प्रतिवादी मुजरा या प्रतिदावा के लिए अपनी प्रतिरक्षा या दावे का समर्थन किसी दस्तावेज पर (चाहे वह दस्तावेज उसके कब्जे या शक्ति में हो या नहीं) निर्भर करता है वहां वह एक सूची में ऐसी दस्तावेज की प्रविष्टि करेगा और—

(क) यदि लिखित कथन उपस्थित किया जाता है तो लिखित कथन के साथ उस सूची को उपाबद्ध करेगा :

परन्तु जहां प्रतिवादी अपने लिखित कथन में ऐसी दस्तावेज के आधार पर जो उसके कब्जे या शक्ति में है, मुजरा का दावा करता है या प्रतिदावा करता है वहां वह लिखित कथन के उपस्थित किए जाने के समय न्यायालय में उसे पेश करेगा और उसी समय वह दस्तावेज या उसकी प्रति लिखित कथन के साथ फाइल किए जाने के लिए परिदत्त करेगा;

(ख) यदि लिखित कथन उपस्थित नहीं किया जाता है तो बाद की प्रथम सुनवाई पर न्यायालय में उस सूची को उपस्थित करेगा।

3. जहां ऐसी कोई दस्तावेज प्रतिवादी के कब्जे या शक्ति में नहीं है, वहां वह जहां तक सम्भव हो, यह कथन करेगा कि वह किसके कब्जे और किसकी शक्ति में है।

4. यदि ऐसी कोई सूची उपाबद्ध या उपस्थित नहीं की जाती है तो प्रतिवादी को इस प्रयोजन के लिए न्यायालय जैसा ठीक समझे, और कालावधि मंजूर करेगा।

5. ऐसा दस्तावेज जो उपनियम (2) में निर्दिष्ट सूची में प्रविष्ट किया जाना चाहिये और जो इस प्रकार प्रविष्ट नहीं किया गया है, न्यायालय की इजाजत के बिना प्रतिवादी की ओर से साक्ष्य में नहीं लिया जायेगा।

6. वादी के साक्षियों की जिरह के लिए पेश किये गए, या वाद-पत्र दाखिल किये जाने के बाद वादी द्वारा उठाये गये किसी मामले के उत्तर में या किसी साक्षी की स्मरण-शक्ति ताजा करने हेतु किसी दस्तावेज में उपनियम (5) लागू नहीं होगा।

7. न्यायालय उपनियम (5) में इजाजत देने का कारण लेखबद्ध करेगा और ऐसी कोई इजाजत तब तक न दी जाएगी जब तक कि निर्दिष्ट सूची में दस्तावेज की प्रविष्टि न की जाने के लिए न्यायालय के समाधानप्रद रूप में पर्याप्त कारण दर्शित नहीं कर दिया जाता।

8क. प्रतिवादी का उन दस्तावेजों को पेश करने का कर्तव्य जिनके आधार पर उसने अनुतोष का दावा किया है.—(1) जहां प्रतिवादी का प्रतिरक्षा का आधार ऐसी दस्तावेज है जो उसके कब्जे या शक्ति में है वहां वह न्यायालय में उसे उस समय पेश करेगा जब उसके द्वारा लिखित कथन उपस्थित किया जाता है और वह लिखित कथन के साथ फाइल की जाने वाली दस्तावेज या उसकी प्रति उसी समय परिदत्त करेगा।

(2) ऐसी दस्तावेज जो इस नियम के अधीन प्रतिवादी द्वारा न्यायालय में पेश की जानी चाहिए, किन्तु इस प्रकार पेश नहीं की जाती है, न्यायालय की इजाजत के बिना वाद की सुनवाई में उसकी ओर से साक्ष्य में नहीं ली जाएगी।

(3) इस नियम की कोई भी बात ऐसी दस्तावेजों पर लागू नहीं होगी, जो—

(क) वादी के साक्षियों की प्रतिपरीक्षा के लिए पेश की गई हों, अथवा

(ख) वाद-पत्र फाइल किए जाने के पश्चात् वादी द्वारा उठाए गए किसी मामले के उत्तर में हों, अथवा

(ग) साक्षी को केवल उसकी स्मृति ताजा करने के लिए दी गई हों।

9. पश्चात्वर्ती अभिवचन—प्रतिवादी के लिखित कथन के पश्चात् कोई भी अभिवचन जो मुजरा के या प्रतिदावे के विरुद्ध प्रतिरक्षा से भिन्न हो, न्यायालय की इजाजत से ही और ऐसे निबन्धनों पर जो न्यायालय ठीक समझे, उपस्थित किया जाएगा, अन्यथा नहीं; किन्तु न्यायालय पक्षकारों में किसी से भी लिखित कथन या अतिरिक्त लिखित कथन किसी भी समय अपेक्षित कर सकेगा और उसे उपस्थित करने के लिए कोई समय नियत कर सकेगा।

10. जब न्यायालय द्वारा अपेक्षित लिखित कथन को उपस्थित करने में पक्षकार असफल रहता है तब प्रक्रिया—जहां ऐसा कोई पक्षकार जिससे लिखित कथन नियम 1 या नियम 9 के अधीन अपेक्षित किया गया है उसे न्यायालय द्वारा, यथास्थिति, अनुज्ञात या नियत समय के भीतर उपस्थित करने में असफल रहता है वहां न्यायालय उसके विरुद्ध निर्णय सुनाएगा या वाद के सम्बन्ध में ऐसा आदेश करेगा जो वह ठीक समझे और ऐसा निर्णय सुनाए जाने के पश्चात् डिक्री तैयार की जाएगी।

आदेश 9

पक्षकारों की उपसंजाति और उनकी अनुपसंजाति का परिणाम

* * * * * * * * * * * * *

2. जहां सम्मनों की तामील, खर्चे देने में वादी के असफल रहने के परिणामस्वरूप नहीं हुई है वहां वाद का खारिज किया जाना.—जहां ऐसे नियत दिन को यह पाया जाए कि प्रतिवादी पर सम्मन की तामील इसलिए नहीं हुई है कि न्यायालय फीस या डाक महसूल देने में और आदेश 7 नियम 9 में यथा अपेक्षित वाद-पत्र या संक्षिप्त कथन की प्रतियां उपस्थित करने में वादी के असफल रहने पर न्यायालय वाद खारिज कर सकता है :

परन्तु ऐसी असफलता के बावजूद यदि प्रतिवादी उस दिन स्वयं या अभिकर्त्ता के द्वारा उपसंजात होता है, तो ऐसा कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

* * * * * * * * * * * * *

5. (1) जहां वादी, सम्मन तामील के बिना लौटने के पश्चात् एक मास तक नए समन के लिए आवेदन करने में असफल रहता है वहां वाद का खारिज किया जाना.—जहां सम्मन प्रतिवादी या कई प्रतिवादियों में से एक के नाम निकाले जाने और तामील के बिना लौटाए जाने के पश्चात् उस तारीख से 1 (एक) मास की अवधि तक, जिसकी न्यायालय को उस अधिकारी ने विवरणी दी है, जो तामील करने वाले अधिकारियों द्वारा दी जाने वाली विवरणियों को न्यायालय को मामूली तौर से प्रमाणित करता है, वादी न्यायालय से नए समन निकालने के लिए आवेदन करने में असफल रहता है वहां न्यायालय यह आदेश करेगा कि वाद ऐसे प्रतिवादी के विरुद्ध खारिज कर दिया जाए किन्तु यदि वादी ने न्यायालय का यह समाधान उक्त अवधि के भीतर कर दिया है कि—

(क) जिस प्रतिवादी पर तामील नहीं हुई है उसके निवास-स्थान का पता चलाने में वह अपने सर्वोत्तम प्रयास करने के पश्चात् असफल रहा है, अथवा

(ख) ऐसा प्रतिवादी आदेशिका की तामील होने देने से अपने को बचा रहा है, अथवा

(ग) समय को बढ़ाने के लिए कोई अन्य पर्याप्त कारण है, तो ऐसा आवेदन करने के लिए समय को न्यायालय इतनी अतिरिक्त अवधि के लिए बढ़ा सकेगा जितनी वह ठीक समझे।

(2) ऐसी दशा में वादी (परिसीमा विधि के अधीन रहते हुए) नया वाद ला सकेगा।

* * * * * * *

आदेश 10

न्यायालय द्वारा पक्षकारों की परीक्षा

* * * * * *

4(1). उत्तर देने से प्लीडर के इंकार का या उत्तर देने में उसकी असमर्थता का परिणाम.—जहां प्लीडर द्वारा उपसंजात देने वाले पक्षकार का प्लीडर, या प्लीडर, के साथ वाला ऐसा व्यक्ति जो नियम 2 में निर्दिष्ट है, वाद से संबंधित किसी ऐसे तात्त्विक प्रश्न का उत्तर देने से इंकार करता है या उत्तर देने में असमर्थ रहता है, जिसके बारे में न्यायालय की राय है कि उसका उत्तर उस पक्षकार को देना चाहिए जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है और यह संभव है कि यदि स्वयं पक्षकार से परिणत किया जाए तो वह उसका उत्तर देने में समर्थ होगा, वहां न्यायालय वाद की सुनवाई किसी भविष्यवर्ती दिन के लिए मुल्तवी कर सकेगा और निदेश दे सकेगा कि ऐसा पक्षकार उस दिन स्वयं उपसंजात हो।

* * * * * * *

आदेश 11

प्रकटीकरण और निरीक्षण

2. विशिष्ट परिप्रश्नों का दिया जाना.—परिप्रश्नों के परिदान के लिए इजाजत के लिए आवेदन पर वे विशिष्ट परिप्रश्न जिनका परिदान किए जाने की प्रस्थापना है, न्यायालय के समक्ष रखे जाएंगे। ऐसे आवेदन पर विनिश्चय करने में न्यायालय किसी ऐसी प्रस्थापना पर भी विचार करेगा जो उस पक्षकार ने जिससे परिप्रश्न किया जाना है प्रश्नगत बातों या उनमें से किसी से संबंधित विशिष्टियों को परिदत्त करने या स्वीकृतियां करने या दस्तावेजें पेश करने के लिए की हों और उसके समक्ष रखे गए परिप्रश्न में से केवल ऐसे परिप्रश्नों के संबंध में इजाजत दी जाएगी जिन्हें न्यायालय या तो वाद के ऋजु निपटारे के लिए या खर्चों में बचत करने के लिए आवश्यक समझे।

* * * * * * *

15. अभिवचनों या शपथपत्रों में निर्दिष्ट दस्तावेजों का निरीक्षण.—वाद में का प्रत्येक पक्षकार किसी ऐसे अन्य पक्षकार की जिसके अभिवचनों का शपथ पत्रों में किसी दस्तावेज के प्रति निर्देश किया गया है, किसी समय यह सूचना देने के लिए हकदार होगा कि वह ऐसी दस्तावेज ऐसी सूचना देने वाले पक्षकार या उसके अभिवक्ता के निरीक्षण के लिए पेश करे और उसे या उन्हें उसकी प्रति लेने दे और ऐसी सूचना का अनुवर्तन न करने वाला पक्षकार तदुपरान्त ऐसी किसी दस्तावेज को जब तक कि वह न्यायालय का समाधान नहीं कर देता कि वह वाद में प्रतिवादी है और ऐसी दस्तावेज का सम्बन्ध केवल उसके अपने हक से है या उसके पास ऐसा कोई अन्य कारण या प्रति हेतु था जिसे कि न्यायालय ऐसी सूचना या अनुवर्तन न करने के लिए पर्याप्त समझता हो, वैसी दशा में न्यायालय खर्चों सम्बन्धी और अन्यथा ऐसी शर्तों सहित जैसा कि न्यायालय ठीक समझता है उसे साक्ष्य में रखे जाने के लिए अनुमति प्रदान कर सकेगा।

* * * * * * *

आदेश 12

स्वीकृतियां

2. दस्तावेजों की स्वीकृति के लिए सूचना.—दोनों पक्षकारों में से कोई भी पक्षकार दूसरे पक्षकार से यह अपेक्षा कर सकेगा कि वह किसी दस्तावेज को सभी न्यायसंगत अपवादों को छोड़कर सूचना की तामील को तारीख से पन्द्रह दिन के भीतर स्वीकार कर ले और ऐसी सूचना के पश्चात् स्वीकृत करने से इंकार या उपेक्षा करने की दशा में, जब तक की न्यायालय अन्यथा निदेश न करे, किसी भी ऐसी दस्तावेज को साबित करने के खर्च ऐसी उपेक्षा या इंकार करने वाले पक्षकार द्वारा दिए जाएंगे चाहे वाद का परिणाम कुछ भी हो और जब तक कि ऐसी सूचना नहीं दे दी गई हो किसी दस्तावेज को साबित करने का कोई भी खर्च केवल तभी अनुज्ञात किया जाएगा जब ऐसी सूचना न देना न्यायालय की राय में व्यय की बचत है।

* * * * * * *

4. तथ्यों को स्वीकृत करने की सूचना.—कोई भी पक्षकार किसी भी अन्य प्रकार से सुनवाई के लिए नियत दिन से कम से कम नौ दिन पहले किसी भी समय लिखित सूचना द्वारा अपेक्षा कर सकेगा कि वह ऐसी सूचना में वर्णित किसी या किन्हीं विनिर्दिष्ट तथ्य या तथ्यों को केवल वाद के प्रयोजनों के लिए स्वीकार कर ले। और ऐसी सूचना की तामील के पश्चात् छह दिन के भीतर या ऐसे अतिरिक्त समय के भीतर जो न्यायालय द्वारा अनुज्ञात किया जाए उसको या उनको स्वीकृत करने से इंकार करने या उपेक्षा करने की दशा में तथ्य या तथ्यों के साबित करने का खर्चा जब तक कि न्यायालय अन्यथा निदेश न करे, इस प्रकार उपेक्षा करने या इंकार करने वाले पक्षकार द्वारा दिया जाएगा चाहे वाद का परिणाम कुछ भी क्यों न हो।

परन्तु यह कि न्यायालय इस प्रकार की गई किसी भी स्वीकृति को ऐसे निबन्धनों पर जो न्याय संगत हों, संशोधित करने या प्रत्याहृत कर लेने के लिए किसी भी पक्षकार को किसी भी समय अनुज्ञा दे सकेगा।

* * * * * * *

आदेश 13

दस्तावेजों का पेश किया जाना, परिबद्ध किया जाना, और लौटाया जाना

1. **दस्तावेजी साक्ष्य का विवाद्यकों के स्थिरीकरण के समय या उसके पूर्व पेश किया जाना.**—(1) पक्षकार या उनके प्लीडर अपने कब्जे या शक्ति में के हर भांति के ऐसे सभी दस्तावेजी साक्ष्य को, जिस पर निर्भर करने का उनका आशय है और जो न्यायालय में उस समय तक फाइल नहीं किया गया है और उन सभी दस्तावेजों को जिन्हें पेश करने के लिए न्यायालय ने आदेश दिया है, विवाद्यकों के स्थिरीकरण के समय या उसके पूर्व पेश करेंगे।

(2) न्यायालय इस प्रकार पेश की गई दस्तावेजों को ले लेगा।

परन्तु यह तब जबकि उनके साथ ऐसे प्ररूप में तैयार की गई एक सही-सही सूची हो जो उच्च न्यायालय ने निर्दिष्ट किया हो।

2. दस्तावेजों को पेश न करने का प्रभाव—(1) किसी भी पक्षकार के कब्जे या शक्ति में का ऐसा कोई भी दस्तावेजी साक्ष्य जो नियम 1 की अपेक्षाओं के अनुसार पेश किया जाना चाहिए था किन्तु पेश नहीं किया गया है, कार्यवाहियों के किसी भी पश्चातवर्ती प्रक्रम में केवल तभी लिया जाएगा जब उसे पेश करने के लिए ऐसा अच्छा हेतुक दिखाया गया है जो न्यायालय का समाधान करने वाला है और ऐसा साक्ष्य लेने वाला न्यायालय अपने ऐसा करने के कारणों को अभिलिखित करेगा।

(2) उपनियम (1) की कोई भी बात ऐसे दस्तावेजों पर लागू नहीं होगी, जो,—

(क) दूसरे पक्षकारों के साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने के लिए पेश किए गए हैं, अथवा

(ख) किसी साक्षी को केवल उसकी स्मृति को ताजा करने के लिए दिए गए हैं।

आदेश 14

विवाद्यकों का निश्चित किया जाना और विधि संबंधी विवाद्यक या सहमत विवाद्यकों पर वाद का विनिश्चय

* * * * *

4. न्यायालय विवाद्यकों की विरचना करने के पहले साक्षियों की या दस्तावेजों की परीक्षा कर सकेगा.—जहां न्यायालय की यह राय है कि किसी ऐसे व्यक्ति की परीक्षा किए बिना जो न्यायालय के सामने नहीं है या किसी ऐसी दस्तावेज का निरीक्षण किए बिना जो वाद में पेश नहीं की गई है, विवाद्यकों की ठीक-ठीक विरचना नहीं की जा सकती है वहां वह विवाद्यकों की विरचना किसी भविष्यवर्ती दिन के लिए स्थगित कर सकेगा और (तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन रहते हुए) समन या अन्य आदेशिका द्वारा विवश करके किसी व्यक्ति की हाजिरी करा सकेगा या उस व्यक्ति द्वारा किसी दस्तावेज को पेश करा सकेगा जिसके कब्जे या शक्ति में वह दस्तावेज है।

5. विवाद्यकों का संशोधन और उन्हें काट देने की शक्ति.—(1) न्यायालय डिक्री पारित करने से पूर्व किसी भी समय ऐसे निबन्धनों पर जो वह ठीक समझे, विवाद्यकों में संशोधन कर सकेगा या अतिरिक्त विवाद्यकों की विरचना कर सकेगा और ऐसे सभी संशोधन या अतिरिक्त विवाद्यक जो पक्षकारों के बीच में विवादग्रस्त बातों के अवधारण के लिए आवश्यक हों, इस प्रकार किए जाएंगे या विरचित किए जाएंगे।

(2) न्यायालय डिक्री पारित करने से पूर्व किसी भी समय किन्हीं भी ऐसे विवाद्यकों को काट सकेगा जिनके बारे में उसे प्रतीत होता है कि वे गलत तौर पर विरचित या पुनः स्थापित किए गए हैं।

* * * * *

आदेश 16

साक्षियों को सम्मन करना और उनकी हाजिरी

* * * * *

4. उपनियम (2) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए इस नियम में निर्दिष्ट सम्मन पक्षकारों द्वारा न्यायालय से या ऐसे अधिकरी से जो न्यायालय द्वारा इस निमित्त नियुक्त किया जाए, आवेदन करके अभिप्राप्त किए जा सकेंगे।

* * * * *

2. सम्मन के लिए आवेदन करने पर साक्षी के व्यय न्यायालय में जमा कर दिए जाएंगे.—(1) सम्मन के लिए आवेदन करने वाला पक्षकार सम्मन के अनुदत्त किए जाने के पहले और उस अवधि के भीतर जो नियत की जाए, ऐसी राशि न्यायालय में जमा करेगा जो सम्मानित व्यक्ति के उस न्यायालय तक जिनमें हाजिर होने की अपेक्षा उससे की गई है, आने और वहां से जाने के यात्रा सम्बन्धी और अन्य व्ययों और एक दिन की हाजिरी के व्ययों को चुकाने के लिए न्यायालय को पर्याप्त प्रतीत हो।

* * * * *

आदेश 17

स्थगन

1. न्यायालय समय दे सकेगा और सुनवाई स्थगित कर सकेगा.—(1) यदि वाद के किसी भी प्रक्रम में पर्याप्त हेतुक दर्शित किया जाता है तो न्यायालय पक्षकारों या उनमें से किसी को भी समय दे सकेगा और वाद की सुनवाई को समय-समय पर स्थगित कर सकेगा।

(2) स्थगन के खर्चे.—न्यायालय ऐसे हर मामले में वाद की आगे की सुनवाई के लिए दिन नियत करेगा और ऐसे स्थगन के कारण हुए खर्चों के संबंध में ऐसा आदेश कर सकेगा जो वह ठीक समझे :

परन्तु—

(क) यदि वाद की सुनवाई प्रारम्भ हो गई है तो जब तक न्यायालय उन असाधारण कारणों से जो उसके द्वारा लेखबद्ध किए जाएंगे, सुनवाई का स्थगन अगले दिन से परे के लिए करना आवश्यक न समझे, वाद की सुनवाई दिन-प्रतिदिन तब तक जारी रहेगी जब तक सभी हाजिर साक्षियों की परीक्षा न कर ली जाए;

(ख) किसी पक्षकार के अनुरोध पर कोई भी स्थगन ऐसी परिस्थितियों को छोड़कर जो उस पक्षकार के नियंत्रण के बाहर हों, मंजूर नहीं किया जाएगा;

(ग) यह तथ्य स्थगन के लिए आधार नहीं माना जाएगा कि किसी पक्षकार का प्लीडर दूसरे न्यायालय में व्यस्त है;

(घ) जहां प्लीडर की रुग्णता या दूसरे न्यायालय में उसके व्यस्त होने से भिन्न कारण से, मुकदमे का संचालन करने में उनकी असमर्थता को स्थगन के लिए एक आधार के रूप में पेश किया जाता है न्यायालय तब तक स्थगन मंजूर नहीं करेगा जब तक उसका यह समाधान नहीं हो जाता है कि ऐसे स्थगन के लिए आवेदन करने वाला पक्षकार समय पर दूसरा प्लीडर मुकर्रर नहीं कर सकता था

(ङ) जहां कोई साक्षी न्यायालय में उपस्थित है किन्तु पक्षकार या उसका प्लीडर उपस्थित नहीं है अथवा पक्षकार या प्लीडर न्यायालय में उपस्थित होने पर भी किसी साक्षी की परीक्षा या प्रतिपरीक्षा करने के लिए तैयार नहीं है वहां न्यायालय, यदि वह ठीक समझे तो, साक्षी का कथन अभिलिखित कर सकेगा, और यथास्थिति, पक्षकार या उसके प्लीडर द्वारा जो उपस्थित न हो अथवा पूर्वोक्त रूप में तैयार न हो, साक्षी की मुख्य परीक्षा या प्रतिपरीक्षा करने को अभिमुक्त करते हुए ऐसे आदेश पारित कर सकेगा जो वह ठीक समझे।

* * * * *

आदेश 18

वाद की सुनवाई तथा साक्षियों की परीक्षा

2.(1) * * * * *

(4) कथन और साक्ष्य का प्रस्तुत किया जाना.—इस नियम में किसी बात के होते हुए भी, न्यायालय ऐसे कारणों से, जो लेखबद्ध किए जाएंगे, किसी पक्षकार को किसी भी प्रक्रम पर किसी साक्षी की परीक्षा करने के लिए निदेश दे सकेगा या अनुज्ञात कर सकेगा।

4. साक्षियों की परीक्षा खुले न्यायालय में की जाएगी.—हाजिर साक्षियों का साक्ष्य खुले न्यायालय में न्यायाधीश की उपस्थिति में और उसके वैयक्तिक निदेशन और अधीक्षण में मौखिक रूप से लिया जाएगा।

* * * * *

17क. ऐसे साक्ष्य का पेश किया जाना जिसकी सम्यक् तत्परता के होते हुए भी पहले जानकारी नहीं थी या जो पेश नहीं किया जा सका था.—जहां कोई पक्षकार न्यायालय का यह समाधान कर देता है कि सम्यक् तत्परता बरतने के पश्चात् भी किसी साक्ष्य की उसे जानकारी नहीं थी या वह उसके द्वारा उस समय जब कि वह पक्षकार अपना साक्ष्य प्रस्तुत कर रहा था, पेश नहीं किया जा सकता था वहां न्यायालय उस पक्षकार को ऐसे साक्ष्य को पश्चात्वर्ती प्रक्रम में ऐसे निबन्धनों पर पेश करने की अनुज्ञा दे सकेगा जो उसे न्यायसंगत प्रतीत हों।

आदेश 20

निर्णय तथा डिक्री

1.(1) * * * * *

(2) निर्णय कब सुनाया जाएगा.—जहां लिखित निर्णय सुनाया जाना है वहां यदि प्रत्येक विवाद्यक पर न्यायालय के निष्कर्षों को और मामले में पारित अंतिम आदेश को पढ़ दिया जाता है तो वह पर्याप्त होगा और न्यायालय के लिए यह आवश्यक नहीं होगा कि वह सम्पूर्ण निर्णय को पढ़कर सुनाए किन्तु सम्पूर्ण निर्णय की एक प्रति निर्णय सुनाए जाने के तुरन्त पश्चात् पक्षकारों या प्लीडरों के परिशीलन के लिए उपलब्ध कराई जाएगी।

6क.(1) दिए गए अनुतोष का निर्णय के अन्तिम पैरा में प्रमित शब्दों में उल्लिखित होना.—उन अनुतोष का कथन जो ऐसे निर्णय द्वारा दिया गया है, निर्णय के अन्तिम पैरा में प्रमित शब्दों में किया जाएगा।

(2) यह सुनिश्चित करने का पूरा प्रयास किया जाएगा कि डिक्री यथासंभव शीघ्र और हर दशा में उस तारीख से जिसको निर्णय सुनाया जाता है, पन्द्रह दिन के भीतर तैयार की जाए किन्तु जहां डिक्री पूर्वोक्त समय के भीतर तैयार नहीं की जाती है वहां न्यायालय, यदि डिक्री के विरुद्ध अपील करने के इच्छुक पक्षकार द्वारा ऐसा करने का अनुरोध किया जाए तो, प्रमाणित करेगा कि डिक्री तैयार नहीं की गई है, और उस विलम्ब के लिए जो कारण हैं उन्हें प्रमाणपत्र में उल्लिखित करेगा और तब—

(क) डिक्री की प्रति फाइल किए बिना डिक्री के विरुद्ध अपील की जा सकेगी और ऐसे मामले में निर्णय का अन्तिम पैरा , आदेश 41 के नियम 1 के प्रयोजनों के लिए डिक्री माना जाएगा; और

(ख) जब तक डिक्री तैयार नहीं की जाती है तब तक निर्णय का अंतिम पैरा निष्पादन के प्रयोजनों के लिए डिक्री समझा जाएगा और हितबद्ध पक्षकार केवल उसी पैरा की प्रति के लिए आवेदन करने का हकदार होगा और उससे सम्पूर्ण निर्णय की प्रति के लिए आवेदन करने की अपेक्षा नहीं की जाएगी, किन्तु जैसे ही डिक्री तैयार हो जाती है, निर्णय का अन्तिम पैरा निष्पादन के प्रयोजनों के लिए या किन्हीं अन्य प्रयोजनों के लिए डिक्री के रूप में प्रभावी नहीं रहेगा :

परन्तु जहां आवेदन निर्णय के केवल अन्तिम पैरा की प्रति अभिप्राप्त करने के लिए किया गया है वहां ऐसी प्रति में वाद के सभी पक्षकारों का नाम और पता उल्लिखित किया जाएगा।

6ख. टाइप किए हुए निर्णयों की प्रतियां कब उपलब्ध की जाएंगी.—जहां निर्णय टाइप किया हुआ है वहां टाइप किए हुए निर्णय की प्रतियां, यदि ऐसा करना साध्य हो तो, निर्णय सुनाने के तुरन्त पश्चात् पक्षकारों को ऐसी प्रति के लिए आवेदन करने वाले पक्षकारों द्वारा उतने प्रभार का जो उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों में विनिर्दिष्ट हो, संदाय किए जाने पर उपलब्ध की जाएंगी।

* * * * * * *

आदेश 39

अस्थायी व्यादेश तथा वादकालीन आदेश अस्थायी व्यादेश

1. जहां किसी वाद में शपथ-पत्र द्वारा या अन्यथा यह सिद्ध कर दिया जाए कि—

(क) किसी वाद में कीं विवादग्रस्त सम्पत्ति के खराब होने का या नष्ट होने का या उस वाद में किसी पक्षकार द्वारा अन्तरित किए जाने का भय है या दोषपूर्ण ढंग से बेच दिए जाने का खतरा है।

(ख) प्रतिवादी ऋणदाताओं के साथ कपट करने के लिए सम्पत्ति को हटाने या व्ययन की धमकी देता है या ऐसा करने का आशय रखता है, या

(ग) प्रतिवादी वाद में विवादग्रस्त किसी सम्पत्ति से बेकब्जा करने की या वादी को उस सम्पत्ति के संबंध में अन्यथा क्षति पहुंचाने की धमकी देता है।

वहां न्यायालय आदेश द्वारा ऐसे कार्य को रोकने के लिए एक अस्थायी आदेश दे सकेगा या उस सम्पत्ति को बर्बाद होने, क्षतिग्रस्त होने, अन्तरित होने, बेचे जाने, हटाए जाने या व्ययन करने से रोकने के प्रयोजन के लिए ऐसा दूसरा आदेश कर सकेगा, जैसाकि वह ठीक समझता है, जब तक कि उस वाद का निपटारा न्यायालय द्वारा किया जाए या न्यायालय द्वारा कोई अतिरिक्त आदेश न किया जाए।

आदेश 41

मूल डिक्रियों की अपीलें

1.(1). हर अपील अपीलार्थी या उसके प्लीडर द्वारा हस्ताक्षरित ज्ञापन के रूप में की जाएगी और न्यायालय में या ऐसे अधिकारी के समक्ष जो न्यायालय इस निमित्त नियुक्त करे, उपस्थापित की जाएगी। ज्ञापन के साथ उस डिक्री की प्रति होगी जिसकी अपील की जाती है और (जब तक अपील न्यायालय वैसा करने से अभिमुक्ति न दे दे) उस निर्णय की प्रति होगी जिस पर वह डिक्री आधारित है :

परन्तु जहां दो या दो से अधिक वादों का साथ-साथ विचारण किया गया है और उनके लिए एक ही निर्णय दिया जाता है और उस निर्णय के अन्तर्गत किसी डिक्री के विरुद्ध चाहे उसी अपीलार्थी द्वारा या भिन्न अपीलार्थियों द्वारा दो या दो से अधिक अपीलें फाइल की गई हैं वहां अपील न्यायालय एक से अधिक प्रतियां फाइल करने से अभिमुक्ति दे सकेगा।

* * * * *

अपील के ग्रहण पर प्रक्रिया

9.(1). जहां अपील का ज्ञापन ग्रहण कर लिया गया है वहां अपील न्यायालय या उस न्यायालय या उस न्यायालय का समुचित अधिकारी उस पर उसके उपस्थापित किए जाने की तारीख पृष्ठांकित करेगा और अपील को उस प्रयोजन के लिए रखी जाने वाली पुस्तक में चढ़ा सकेगा।

(2) ऐसी पुस्तक अपीलों का रजिस्टर कहलाएगी।

* * * * *

11.(1) अपील न्यायालय, यदि वह अभिलेख मंगाना ठीक समझता है तो, ऐसा करने के पश्चात् और अपीलार्थी या उसके प्लीडर को सुनने के लिए दिन नियत करने के पश्चात्, और यदि वह उस दिन उपसंजात होता है तो तदनुसार उसे सुनने के पश्चात् अपील को उस न्यायालय को सूचना भेजे बिना जिसकी डिक्री की अपील की गई है, और प्रत्यर्थी पर या उसके प्लीडर पर सूचना की तमील कराए बिना, खारिज कर सकेगा।

* * * * * * *

12.(1) * * * * *

(2) ऐसा दिन न्यायालय के चालू कारबार, प्रत्यर्थी के निवास स्थान और अपील को सूचना की तामील के लिए आवश्यक समय को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार नियत किया जाएगा कि प्रत्यर्थी को ऐसे दिन उपसंजात होने और अपील का उत्तर देने के लिए पर्याप्त समय मिल जाए।

13.(1) जहां अपील नियम 11 के अधीन खारिज न कर दी गई हो वहां अपील न्यायालय अपील की सूचना उस न्यायालय को भेजेगा जिसको डिक्री की अपील की गई है।

(2) जहां अपील ऐसे न्यायालय की डिक्री की है जिसके अभिलेख उस अपील न्यायालय में निलक्षिप्त नहीं हैं वहां ऐसी सूचना पाने वाला न्यायालय समस्त साक्ष्य शीघ्रता से वाद में के सभी तात्विक कागज या ऐसे कागज भेजेगा जो अपील न्यायालय विशेषतया मंगाए।

(3) कोई भी पक्षकार उस न्यायालय जिसकी डिक्री की अपील की गई है, ऐसे न्यायालय में के कागजों में से किसी ऐसे को विनिर्दिष्ट करके, जिसकी प्रतियां लिखे जाने की वह अपेक्षा करता है, लिखित आवेदन कर सकेगा और ऐसे कागजों की प्रतियां आवेदक के खर्चे पर की जाएंगी और उसे दी जाएंगी।

* * * * * * *

15. प्रत्यर्थी को दी जाने वाली सूचना में यह घोषित किया जाएगा कि यदि वह अपील न्यायालय में ऐसे नियत दिन को उपसंजात नहीं होगा तो अपील एकपक्षीय सुनी जाएगी।

सुनवाई की प्रक्रिया

* * * * * * *

18. यदि नियत दिन को या ऐसे किसी अन्य दिन को जिसके लिए सुनवाई स्थगित की गई है, यह पाया जाता है कि प्रत्यर्थी पर सूचना की तामील के खर्चे को पूरा करने के लिए अपेक्षित राशि नियत अवधि के भीतर निक्षिप्त करने में अपीलार्थी के असफल रहने के परिणामस्वरूप सूचना की तामील प्रत्यर्थी पर नहीं हुई है, (या यदि सूचना तामील किए बिना वापस की जाती है और यह पाया जाता है कि सूचना की तामील के लिए किसी और प्रयत्न के खर्चे को पूरा करने के लिए अपेक्षित राशि किसी पश्चात्वर्ती नियत अवधि के भीतर निक्षिप्त करने में अपीलार्थी के असफल रहने के परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी को सूचना नहीं निकाली गई है) तो न्यायालय आदेश कर सकेगा कि अपील खारिज कर दी जाए:

परन्तु यदि ऐसे किसी दिन को प्रत्यर्थी अपील की सुनवाई के लिए पुकार होने पर उपसंजात हो जाता है तो ऐसा कोई आदेश नहीं किया जाएगा चाहे प्रत्यर्थी पर सूचना की तामील न हुई हो।

19. जहां अपील नियम 11 के उपनियम (2) या नियम 17 या नियम 18 के अधीन खारिज की जाती है वहां अपीलार्थी अपील न्यायालय में अपील के पुनर्ग्रहण किए जाने के लिए आवेदन कर सकेगा और जहां यह साबित कर दिया जाता है कि वह अपील की सुनवाई के लिए पुकार होने पर उपसंजात होने से या ऐसी अपेक्षित राशि निक्षिप्त करने से किसी पर्याप्त हेतुक से निवारित हो गया था वहां न्यायालय खर्चे सम्बन्धी या अन्यथा ऐसे निबन्धनों पर जो वह ठीक समझे, अपील को पुनः ग्रहण करेगा।

* * * * * * *

22.(1) * * * * *

(3) जब तक प्रत्यर्थी ने आक्षेप के साथ उस पक्षकार को जिस पर ऐसे आक्षेप से सम्भवतः प्रभाव पड़ सकता है या, उसके प्लीडर को यह लिखित अभिस्वीकृति कि उसे उसकी प्रति प्राप्त हो गई है, फाइल न कर दी हो, अपील न्यायालय आक्षेप के फाइल किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र उस प्रति की तामील ऐसे पक्षकार या उसके प्लीडर पर प्रत्यर्थी के व्यय पर कराएगा।

* * * * *

परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का अधिनियम संख्यांक 36) से उद्धरण

1963 के अधिनियम सं. 36

* * * * * *

भाग-3

परिसीमा काल की संगणना

12.(1)* * * * * *

(3) जहां कि किसी डिक्री या आदेश की अपील की जाती है या उसका पुनरीक्षण या पुनर्विलोकन ईप्सित है या जहां कि किसी डिक्री या आदेश की अपील की इजाजत के लिए आवेदन किया जाता है, वहां उस निर्णय की, जिस पर डिक्री या आदेश आधारित है, प्रतिलिपि अभिप्राप्त करने के लिए अपेक्षित समय भी अपवर्जित कर दिया जाएगा।

* * * * * * *

अनुबन्ध-ख

भारत का विधि आयोग

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 पर प्रश्नावली

भारत का विधि आयोग

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

पर

प्रारूप प्रश्नावली

परिचालक टिप्पणियाँ

1. भारत सरकार, विधि मंत्रालय ने भारत के विधि आयोग से सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के पुनरीक्षण के बारे में अपनी सिफारिशें देने का अनुरोध किया है।

2. आयोग ने यह कार्य दो चरणों में करने का विचार किया है। आयोग ने पहले चरण में सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1997, सरकारी विधेयक के रूप में राज्य सभा में पुनः स्थापित, में सुझाए गए विधिक संशोधनों पर अपने विचार व्यक्त करने का विचार किया है। कार्य के दूसरे चरण में, आयोग, यदि आवश्यक हुआ, संहिता के उन उपबंधों पर विचार करेगा जिन पर विधेयक में विचार नहीं किया गया है (अर्थात वे उपबंध जिन पर विधेयक में किसी संशोधन का प्रस्ताव नहीं है) परन्तु सिविल प्रक्रिया विधि में सरलता, निश्चितता और एकरूपता लाने तथा विधि को न्यायोचित बनाने और उसका आधुनिकीकरण की दृष्टि से जिनके पुनरीक्षण की आवश्यकता है।

आयोग ने इस परियोजना को दो चरणों में विभक्त करने (उपर्युक्त रूप में) का निश्चय इस तथ्य को ध्यान में रखकर किया है कि इस स्थिति में संहिता के व्यापक पुनरीक्षण में काफी समय लग सकता है जबकि विधेयक में अन्तर्निहित प्रावधानों पर तत्काल धन दिए जाने की आवश्यकता है।

3. विधेयक में अन्तर्निहित विभिन्न प्रस्तावों पर विज्ञ विचार प्राप्त करने के उद्देश्य से आयोग ने इस विषय पर एक प्रश्नावली तैयार की है। तैयार किए गए विभिन्न प्रश्नों में आयोग ने, संक्षेप में, कुछ उपायों तथा अनुकल्पों का उल्लेख करने का प्रयास किया है जो विभिन्न संशोधनों (विधेयक में प्रस्तावित) से संबंधित प्रश्नों के बारे में संभवतया स्वीकार किए जा सकते हैं। आयोग यह भी स्पष्ट करना चाहेगा कि ये उपाय तथा अनुकल्प आयोग के अंतिम विचार नहीं हैं। ये विषय पर **सुविज्ञ विचार** जानने की दृष्टि से और विधेयक में अन्तर्विष्ट प्रस्तावों पर जो व्यक्ति और निकाय अपने विचार व्यक्त करना चाहते हैं उनके द्वारा विभिन्न प्रश्नों पर व्यापक विचार की सुविधा के प्रयोजन से रखे गए हैं।

4. आयोग सराहना करेगा यदि अभिरुचि रखने वाले व्यक्ति और निकाय 30 अप्रैल, 1998 तक आयोग को अपनी टिप्पणियां भेज देंगे।

(पढ़ने की सुविधा के लिए, विधेयक में प्रस्तावित प्रत्येक संशोधन वर्तमान उपबंध के पाठ के साथ दिया गया है)

प्रश्नावली

वादों का संस्थित किया जाना :

प्रश्न-1 धारा 26 (वाद-पत्र) : विधेयक का खण्ड 2

संहिता की धारा 26 में प्रावधान है कि प्रत्येक वाद कोई वाद-पत्र प्रस्तुत कर अथवा अन्य ऐसे किसी तरीके से जैसा कि विहित किया जाए संस्थित किया जाएगा। विधेयक में निम्नलिखित अन्तःस्थापित करने का प्रस्ताव है :—

"प्रत्येक वाद में तथ्य प्रश्नपत्र द्वारा साबित किये जाएंगे"

(देखें निम्नलिखित प्रश्न-11—आदेश-6, नियम-5)

मुख्य प्रयोजन, वाद में किए गए असत्य कथन, जो एक आम बात मानी जाती है—की संभावना को कम करना है।

(क) क्या आप समझते हैं कि उपर्युक्त संशोधन उपयोगी सिद्ध होगा ?

(ख) यदि हां, तो क्या आप संशोधन को निम्नलिखित रूप देना चाहेंगे :

प्रश्न-2 धारा 58 (बन्दीगृह में निरोध—अधिकतम अवधि) : विधेयक का खण्ड 2

संहिता की विद्यमान धारा 58 में कतिपय प्रावधान हैं जिनमें डिक्री के निष्पादन में निर्णीत ऋणी के निरोध की अवधि की सीमा निर्धारित की गई है। ये सीमाएं डिक्री की राशि पर आधारित हैं। रुपये का मूल्य गिर जाने की दृष्टि से विधेयक में संबंधित राशियों में वृद्धि करने का निम्नलिखित प्रस्ताव किया गया है :—

वर्तमान राशि	प्रस्तावित राशि	अधिकतम अवधि
(क) 1000/- रु. से अधिक	5000/- रु. से अधिक	3 माह
(ख) 500/- रु. से अधिक परन्तु 1000/- रु. से अनधिक	2000/- रु. से अधिक परन्तु 5000/- रु. से अनधिक	6 सप्ताह
(ग) राशि 500/- रु. से अधिक नहीं होगी	राशि 2000/- रु. से अधिक नहीं होगी	कोई निरोध आदेशित नहीं होगा

ए. डी. आर.

प्रश्न 3 : धारा 89 (अन्तःस्थापन) (न्यायालय से बाहर विवादों का निपटारा) विधेयक का खण्ड-7

विधेयक में नई धारा (धारा 89) अन्तःस्थापित करने का प्रस्ताव है जिसमें यह व्यवस्था की गई है कि "जहां न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि किसी ऐसे समझौते के तत्व विद्यमान हैं, जो दोनों पक्षों को स्वीकार्य हो सकता है, वहां न्यायालय समझौते के निबंधन बनाएगा और उन्हें पक्षकारों, उनकी टीका-टिप्पणियों के लिए देगा" और पक्षकारों की टीका टिप्पणियों के पश्चात, न्यायालय (यह प्रस्ताव किया गया है) संभव समझौते के निबंधन पुनः तैयार कर सकेगा और उन्हें माध्यस्थम, सुलह, "न्यायिक समझौता" जिसके अन्तर्गत लोक अदालत के माध्यम से समझौते भी हैं अथवा बीच-बचाव के लिए निर्दिष्ट करेगा।

जहां कोई विवाद माध्यस्थम या सुलह के लिए निर्दिष्ट किया गया है, विधेयक में प्रस्ताव है कि वहां माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996 के उपबंध ऐसे लागू होंगे मानो माध्यस्थम और सुलह के लिए कार्यवाहियां उस अधिनियम के उपबंधों के अधीन समझौते के लिए निर्दिष्ट की गई थी।

जहां विवाद लोक अदालत के लिए अथवा "न्यायिक समझौते" के लिए निर्दिष्ट किया गया है वहां विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के उपबंध लागू होंगे।

जहां विवाद बीच-बचाव के लिए निर्दिष्ट किया गया है वहां "न्यायालय पक्षकारों के बीच समझौता कराएगा और ऐसी प्रक्रिया का पालन करेगा जो विहित की जाए"।

यह उल्लेख भी किया जाना चाहिए कि जहां विधेयक के खण्ड-7 की यह अपेक्षा है कि "समझौते" के ऐसे प्रयास केवल वहीं किए जाएंगे जहां समझौते के तत्व विद्यमान हैं वहां विधेयक के खण्ड 20(1) में आदेश 10 के नियम 1-क को लागू करने का प्रस्ताव है जिसके अन्तर्गत पक्षकारों की स्वीकृतियों तथा प्रत्याख्यानों को अभिलिखित करने के पश्चात् न्यायालय वाद के पक्षकारों को धारा 89 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट रूप से न्यायालय के बाहर समझौते का किसी भी तरीके का विकल्प देने के लिए निदेशित करेगा।

(देखें नीचे दिया गया प्रश्न—22)

(इस प्रकार पक्षकारों द्वारा प्रस्तावित आदेश 10 नियम 1-क के अन्तर्गत कोई न कोई विकल्प अपनाया जाना चाहिए)

विधेयक में प्रस्ताव का उद्देश्य विवाद समाधान के अन्य विकल्पों को प्रोत्साहन देना है। तथापि, विधेयक में निबंधित प्रस्तावों पर कतिपय सारवान प्रश्न विचारार्थ उत्पन्न होते हैं। अतः निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार आमंत्रित किए जाते हैं।

(क) क्या खण्ड 3 के प्रस्ताव से विवाद का समाधान शीघ्र हो पाएगा अथवा इससे वाद के कालक्रम में एक पग की और वृद्धि हो जाएगी ?

(ख) क्या वैकल्पिक पद्धति के लिए न्यायालय का निर्देश स्वविवेकाधिकार से (न्यायालय के) किया जाना चाहिए अथवा विधिक होना चाहिए ?

(ग) क्या निर्देश का स्तर धारा 89 में ही उल्लिखित होना चाहिए ?

(घ) जहां निर्देश माध्यस्थम अथवा सुलह के लिए किया जाता है क्या वहां प्रस्तावित धारा 89(2) (क) का फारमूला, जैसे कि कार्यवाहियां उस अधिनियम (अर्थात् माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996) के अधीन समझौते के लिए निर्दिष्ट की गयी थी, उपयुक्त और अधिनियम की शब्दावली के अनुरूप होगा ?

(ङ) क्या समझौते का निबंधन स्वयं न्यायालय द्वारा तैयार किया जाएगा अथवा क्या समझौता करने के लिए पक्षकारों को अनुमति देना बेहतर होगा ? (इस पर गहन विचार किए जाने की आवश्यकता है क्योंकि 1996 का अधिनियम **माध्यस्थम समझौते** की अवधारणा पर आधारित है)

(च) माध्यस्थम के मामले में भी विवरण संबंधी प्रश्न पैदा होते हैं, उदाहरण के लिए—मध्यस्थ कौन होगा, मध्यस्थ की फीस क्या होगी आदि। इन मसलों से किस प्रकार निपटा जाएगा ?

(छ) जहां बीच-बचाव का निर्णय किया जाता है, तब प्रस्तावित धारा 89 के अन्तर्गत "न्यायालय पक्षकारों के बीच समझौता करायेगा"। यदि पक्षकार समझौते के लिए सहमत नहीं है तब स्थिति क्या होगी ?

(खण्ड 20 के संबंध में, आदेश 10 नियम 1-क अन्त:स्थापित करने संबंधी कुछ और प्रश्न भी उठ सकते हैं—देखें निम्नलिखित प्रश्न-22)

अपील तथा पुनर्विलोकन

प्रश्न-4 : धारा 100-क (उच्च न्यायालय एकल न्यायाधीश के निर्णयों से अपील) : विधेयक का खण्ड 10

इस समय संहिता की धारा 100 क के अनुसार एकल न्यायाधीश के अपीलीय निर्णय से अपील (लेटर्स पेटेंट अपील) नहीं की जा सकेगी। विधेयक में इस वर्जन के क्षेत्र का विस्तार करने का (धारा 100-क में संशोधन करके) प्रस्ताव किया गया है ताकि एकल न्यायाधीश के मूल निर्णय से भी साथ ही "संविधान के अनुच्छेद 226 अथवा 227 के अधीन किए गए आवेदन पर" एकल न्यायाधीश किसी रिट, निदेश या आदेश में एकल न्यायाधीश के निर्णय से कोई अपील नहीं की जा सकेगी।

क्या आप समझते हैं कि यह संशोधन न्याय के हित में है ? क्या, विकल्प रूप में, आप ऐसे संशोधन के पक्षधर हैं जहां ऐसी अपील को उन मामलों तक सीमित रखा जाए जिनमें न्यायाधीश के निर्णय में विधि का कोई सारभित प्रश्न अन्तर्निहित हो अथवा निर्णय के परिणामस्वरूप न्यायहानि होने की संभावना हो ?

प्रश्न-5 : धारा 102 : कतिपय मामलों में दूसरी अपील का वर्जन विधेयक का खण्ड-11

संहिता की धारा 102 कतिपय मामलों में (जिन्हें छोटे मोटे मामले कहा जा सकता है) दूसरी अपील का वर्जन करती है। यह वर्जन निम्नलिखित दो शर्तें पूरी होने पर लागू होता है, :—

(i) वाद लघुवाद न्यायालयों द्वारा प्रसंशय हो, एवं

(ii) वाद की विषयवस्तु का मूल्यांकन तीन हजार रुपये से अधिक न हो।

अत: इस समय दोहरी परिसिद्धि अवश्य है जो—

(i) विवाद के स्वरूप, और

(ii) विषय-वस्तु के मूल्यांकन पर निर्भर है।

विधेयक में उपर्युक्त (1) में दर्शायी गई शर्त को छोड़ देने का प्रस्ताव है। जहां तक दूसरी शर्त का संबंध है, विधेयक में "तीन हजार" के स्थान पर "पच्चीस हजार" (रुपये की मूल्य की गिरावट को ध्यान में रखते हुए) प्रतिस्थापित करने का प्रस्ताव है।

क्या आप उपर्युक्त दृष्टिकोण से सहमत हैं ?

क्या आप यह मापदंड रखने की वांछनीयता से सहमत हैं कि वाद लघुवाद न्यायालयों द्वारा प्रसंज्ञेय हो (धन संबंधी मूल्यांकन की राशि में वृद्धि करते हुए) संबंध में घोषणा, व्यादेश के लिए वादों को मूलत: वाद पर ध्यान दिया गया है और तत्पश्चात् विषय-वस्तु के मूल्यांकन पर।

इस समय धारा 102 घोषणात्मक वादों पर लागू नहीं होती है; **रमेश चन्द्र अय्यर बनाम नूरूल्ला साहेब,** 1907, आई. एल. आर. 30 मद्रास 100 अथवा तक के वाद—देखें धारा 15, 16, 27 प्रान्तीय लघुवाद न्यायालय अधिनियम, 1887। न ही यह लेखा के लिए वाद पर लागू होती है।

(लघुवाद न्यायालय अधिनियम, 1887, दूसरी अनुसूची, अनुच्छेद 31)

वाद का स्वरूप अपील किया जाना विनिश्चित करता है

दिगम्बर पार्श्वनाथ जैन मन्दिर बनाम **बालूबाई**

ए. आई. आर. मुम्ब. 221

मोहिनी बनाम **रामादास**

ए. आई. आर. 1924 कलकत्ता, 487

बी. पी. गौतम बनाम **आर. के. अग्रवाल**

ए. आई. आर. 1977 इलाहाबाद, 103

(उपर्युक्त विधिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए विधेयक के खण्ड 11 पर आपकी टिप्पणियां आमंत्रित की जाती हैं)

प्रश्न-6 धारा 115 (पुनरीक्षण) विधेयक का खण्ड 12 :

(i) संहिता की धारा 115(1), परन्तुक, (1976 में अन्त:स्थापित) में यह प्रावधान है कि उच्च न्यायालय निम्नलिखित के सिवाय, किसी वाद के अनुक्रम में किसी आदेश में या कोई विवाद्यक निश्चित करने वाले किसी आदेश (संक्षेप में वादकालीन आदेश) में कोई परिवर्तन नहीं करेगा और ना ही उसे उल्टेगा :

(क) कोई आदेश जो किसी पुनरीक्षण के लिए आवेदन करने वाले पक्षकार के पक्ष में पारित किया गया है, मामले का अन्तिम निपटारा कर देता है, या

(ख) कोई आदेश यदि उसे बने रहने दिया जाए तो वह न्याय को विफल कर देगा अथवा जिस पक्षकार के विरुद्ध यह पारित किया गया है, उसे अपूर्णीय क्षति कारित करने वाला होगा।

उपर्युक्त, दोनों में से किसी भी मामले में उच्च न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है।

यह ठीक है कि, धारा के मुख्य पैराग्राफ में दी गयी आवश्यकताओं—खंड (क), (ख) और (ग)—को भी पूरा करना आवश्यक है।

देखें, मुल्ला सिविल प्रक्रिया संहिता (1995), खण्ड-1 पृष्ट 776 और 824

विधेयक में खण्ड (ख) को निकालने की दृष्टि से परन्तुक में संशोधन करने का प्रस्ताव किया गया है। इसका प्रभाव वादकालीन आदेशों में, न्याय की विफलता अथवा अपूर्णीय क्षति के मामलों में भी पुनरीक्षण में हस्तक्षेप को रोकना है। प्रस्ताव का आशय याचिकाओं के पुनरीक्षण के मामलों की संख्या को कम करना है। तथापि, यह नोट किया जा सकता है कि इसका प्रभाव वादकालीन आदेश के परिणाम-स्वरूप गम्भीर अन्याय के मामलों में भी हस्तक्षेप नहीं करना होगा। उदाहरण के लिए अभिवचनों के संशोधन को अस्वीकार करने वाला विचारण न्यायालय के आदेश में, बीच में घटी घटनाओं के कारण, वास्तविक त्रुटि को ठीक करने के प्रयोजन के लिए अथवा किसी को पक्षकार बनाने की अनाशयित चूक को सुधारने अथवा प्रतिरक्षा में अनाशयित रूप से कोई तर्क छूट जाने को ठीक करने की दृष्टि से भी विधेयक के अन्तर्गत कोई संशोधन नहीं किया जा सकेगा।

(ii) अग्राहीय बताकर किसी दस्तावेज को रद्द करने वाले आदेश में भी कोई संशोधन या पुनर्विचार नहीं किया जायेगा चाहे वह दस्तावेज कितना भी सारपूर्ण क्यों न हो।

(ऐसे आदेशों को अंतिम डिक्री के विरुद्ध अपील में चुनौती दी जा सकती है परन्तु इस प्रकार व्यतीत हुआ समय भी एक गम्भीर अन्याय होगा)

(iii) पुनरीक्षण न्यायालय परवर्ती घटनाओं पर ध्यान देने के अवसर से वंचित हो जायेंगे—एक ऐसी शक्ति से जो इस समय उनके पास है।

स्टेट ऑफ मद्रास बनाम **आशर टैक्सटाइल्स लिमिटेड, ए. आई. आर.** 1960 मद्रास 180

(iv) यदि विचारण न्यायालय किसी तथ्य पर किसी विवाद्यक का त्रुटिपूर्ण निबंधन करता है, जो प्रतिवादी द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो उच्च न्यायालय (विद्यमान धारा के अधीन) हस्तक्षेप कर सकता है।

गोरख बनाम **विठ्ठल**

1887, आई. एल. आर. 11 बम्बई 435

शिव प्रसाद बनाम **त्रिकमदास**

1915 आई. एल. आर. 42 कलकत्ता, 926, 931 (प्रस्ताव इस शक्ति से वंचित कर देगा)

उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए क्या आप धारा 115 के प्रस्तावित संशोधन के पक्षधर होंगे ?

वाद-पत्र तथा सम्मन

प्रश्न-7 आदेश 4 नियम 1 (वादपत्र द्वारा वाद का आरम्भ होना) विधेयक का खण्ड 14

संहिता के आदेश 4 नियम (1) में यह व्यवस्था है कि प्रत्येक वाद वादपत्र प्रस्तुत करके संस्थित किया जाएगा, यदि आदेश 4 के नियम 1(2) में आगे यह व्यवस्था है कि प्रत्येक वादपत्र उन नियमों जो कि आदेश 6 और 7 में अन्तर्विष्ट हैं, जहां तक वे लागू होते हैं, के अनुसार होगा। विधेयक में इस संबंध में दो संशोधनों का प्रस्ताव है;

(i) यह प्रस्ताव है कि वादपत्र दो प्रतियों में होगा। यह आदेश 4, नियम 1(2) हो जाएगा; (पारिणामिक प्रस्तावों के लिए देखें निम्नलिखित प्रश्न-14)

(ii) आगे आदेश 4 में नियम 1(3) निम्नलिखित रूप में, अन्त:स्थापित करने का प्रस्ताव है :

"(3) वादपत्र तब तक सम्यक् रूप से संस्थित किया गया नहीं समझा जाएगा जब तक वह उपनियम (1) और उपनियम (2) में विनिर्दिष्ट अपेक्षाओं का पालन नहीं करता है"

यह प्रतीत होता है कि जहां पहला संशोधन अपेक्षाकृत कम महत्व का है, वहीं दूसरे संशोधन पर गम्भीर रूप से विचार करने की आवश्यकता है। इसका प्रभाव स्पष्ट है, विशेषतया प्रस्तावित नियम 4(3) को नियम 4(1) तथा 4(2) के साथ पढ़ने से, आदेश 6 तथा आदेश 7 की अपेक्षाओं के अनुपालन में किसी भी चूक के गम्भीर परिणाम होंगे।

इस संदर्भ में यह स्मरण रखना होगा कि आदेश 6 (सामान्यतया अभिवचन) तथा आदेश 7 (वादपत्र) में विभिन्न प्रकार के प्रावधान हैं जो विवरण के विविध मामलों के बारे में हैं। यदि ऐसा उपबन्धित किया जाए कि विवरणात्मक मामलों के संबंध में किसी प्रकार के दोष का अर्थ यह होगा कि विधि के अनुसार वादपत्र नहीं है, तब बड़ी विसंगतियां और कठिनाइयां अवश्य ही पैदा हो जाएंगी। उदाहरण के लिए संहिता में अन्य बातों के साथ-साथ यह निर्धारित किया गया है (आदेश 6 नियम 2) कि अभिवचन में केवल सारवान् तथ्यों का कथन होना चाहिए जिन पर वादी अपना मामला तैयार करता है—और यह संक्षिप्त रूप में किया जाना चाहिए। यदि न्यायालय का निबंधक कार्यालय इसे "संक्षिप्त रूप में" नहीं मानता है तो वाद उपयुक्त रूप से संस्थित नहीं समझा जायेगा इसका परिणाम यह होगा कि वादी को वादपत्र का प्रारूप फिर से तैयार करना होगा। परन्तु, यदि वह ऐसा करता भी है तो भी यह निश्चित नहीं होगा कि पुन:प्रारूपित वादपत्र की शैली अथवा सार संक्षिप्त है और इसमें सभी सारवान् तथ्य विद्यमान् हैं। नि:संदेह, प्रारूपण के स्तर में सुधार किया जाना चाहिए। परन्तु यह आशंका है कि यह प्रयोजन प्रारूपण में दोषों के प्रतिकूल परिणाम दर्शाते हुए पक्षकारों के पास जाने की अपेक्षा बार के कनिष्ठ सदस्यों को प्रशिक्षित करके अधिक उपयुक्त रूप में प्राप्त किया जा सकता है।

यदि दूसरा उदाहरण हो तो भी ऐसी ही समस्या सामने आती है यदि आदेश 7 नियम 14 के प्रावधानों का (दस्तावेज प्रस्तुत किया जाना आदि) उल्लंघन बताया जाता है। प्रस्तावित संशोधन के अन्तर्गत वादी तथा न्यायालय का निबंधन कार्यालय लम्बे विवाद, मूल दस्तावेज क्या है, साक्ष्यकारी दस्तावेज क्या है आदि, में फंसने के लिए बाध्य हो जायेगा।

आदेश 7, नियम 1(ग) की इस अपेक्षा से एक और कठिनाई पैदा हो जाएगी कि वादपत्र में वाद हेतुक दर्शाने वाले तथ्य अन्तर्विष्ट होने चाहिएँ। **आरम्भिक चरण** में वादी के लिए सदैव यह निश्चित करना सरल नहीं होता कि "अनिवार्य तथ्य" क्या हैं। एक अच्छे वकील के लिए भी यह मामला सदैव इतना सरल नहीं होता क्योंकि मामले में तथ्य और विधिक दोनों का मिश्रण होता है और सारभूत विधि के जटिल विवाद्यक तथ्यों से अभिन्न रूप में जुड़े रहते हैं। वादी के वकील तथा निबंधन कार्यालय के बीच मतभेद से समस्याएं पैदा हो सकती हैं।

आयोग चाहता है कि प्रश्नावली का उत्तर देने वाले, उपर्युक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए इस मामले में अपने सुविचारित मत प्रेषित करें।

प्रश्न-8 आदेश 5 नियम 1 (उपस्थित होने तथा उत्तर देने के लिए सम्मन) : विधेयक का खण्ड 15 (1) :

संहिता के आदेश 5 के नियम 1 में न्यायालय को (वाद संस्थित हो जाने के पश्चात्) प्रतिवादी को सम्मन जारी करने की शक्ति प्राप्त है कि वह सम्मन में किसी निर्दिष्ट दिन उपस्थित होकर वादी के दावे का उत्तर दे।

विधेयक में इस नियम में संशोधन करने का प्रस्ताव किया गया है जिसके अन्तर्गत ऐसा निर्धारित दिन वाद संस्थित किए जाने के दिन से तीस दिन के भीतर होगा।

दूसरे जबकि वर्तमान नियम यह न्यायालय के स्वविवेकाधिकार पर छोड़ दिया गया है कि प्रतिवादी उसी दिन अपना लिखित कथन भी प्रस्तुत करे परन्तु संशोधन में उपस्थित होने के लिए निर्धारित दिन लिखित कथन प्रस्तुत करने का भी निर्धारित दिन होगा।

तीसरे, संशोधन में यह भी प्रस्ताव किया गया है कि यदि प्रतिवादी उक्त दिन को लिखित कथन प्रस्तुत करने में असफल रहता है, तो उसे ऐसे किसी अन्य दिन को उसे प्रस्तुत करने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा जो "प्रतिवादी पर सम्मन की तामील की तारीख से तीस दिन के परे नहीं होगा"।

इस प्रकार, उपस्थिति के लिए निर्धारित तिथि (प्रस्तावित संशोधन के अधीन) वादपत्र प्रस्तुत करने की तारीख तीस दिन से परे नहीं होगी तथा लिखित कथन प्रस्तुत करने की तारीख सम्मन तामील होने की तारीख से तीस दिन से परे नहीं होगी।

इस प्रकार प्रस्तावित संशोधनों का आशय अच्छा है, जिसका उद्देश्य यह है कि प्रारम्भिक विचारण यथा शीघ्र पूरा हो सके। इसके साथ ही ऐसे ही अन्य निम्नलिखित महत्वपूर्ण पहलू सामने आते हैं जिनपर विचार किया जाना चाहिए :

(क) क्या प्रश्नाधीन कार्यों के लिए कठोर समय सीमा निर्धारित करना उचित है—कठोर इस अर्थ में कि न्यायालय उसमें कोई ढील देने या उसे तब भी संशोधित करने का स्वविवेकाधिकार नहीं होगा जबकि मामले के विशेष तथ्यों की ऐसी अपेक्षा हो ?

(ख) उपस्थित होने तथा लिखित कथन प्रस्तुत करने की तारीख निम्नलिखित सहित, बहुत से पहलुओं को ध्यान में रखकर निर्धारित की जाती है :—

(i) संबंधित न्यायालय के समक्ष कार्यभार;

(ii) न्यायालय मुख्यालय से प्रतिवादी के निवास स्थान की दूरी;

(iii) समन भेजने के लिए उपलब्ध सुविधाएं;

(iv) दावे का आकार (बड़े दावे में उचित प्रतिरक्षा के लिए अच्छे खासे दस्तावेजों की आवश्यकता होती है)

(v) विवाद की जटिलता (कभी-कभी प्रतिवादी को दावे से निपटने के लिए काफी समय की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए उसे सक्षम विधिक परामर्श लेना होता है, न केवल इसलिए कि वह किन तथ्यों को स्वीकार करें और किन्हें अस्वीकार अपितु अस्वीकार होने का निबंधन किस रूप में किया जाए।

(vi) अपने (प्रतिवादी के) वकीलों से यह ज्ञात करने के लिए परामर्श करना कि क्या अधिकारिता, परिसीमा, वाद हेतुक का न होना विचाराधीन वाद का तर्क जैसी विधिक प्रतिरक्षा उपलब्ध है अथवा नहीं।

कहने का अर्थ यह है कि इनमें से बहुत से पहलू उदार तथा परिवर्तनीय हैं और अपेक्षित समय के बारे में ये किसी एक समान मानदंड से शासित नहीं है।

उपर्युक्त दृष्टि से प्रस्तावित संशोधन पर टिप्पणियां आमंत्रित की जाती हैं।

[विधेयक के खण्ड 15(iii) और 15(iv) में कतिपय संशोधन प्रस्ताव हैं, जो अन्य प्रस्तावों पर भी परिमाणिक हैं]

प्रश्न-9 : आदेश 5 नियम 9, 9क, 19-क, 24 और 25 (सम्मन तामील करने की रीति) : खण्ड 15(v) से (ix) :

संहिता के आदेश 5, नियम 9-क, 19-क, 21, 24 तथा 25 आदि में इस समय सम्मन तामील करने की अवधारणा की गई है—

(1) न्यायालय के उचित अधिकारी द्वारा, और

(2) रजिस्टर्ड डाक द्वारा भी (जब तक कि न्यायालय इसे अभिमुक्ति प्रदान न कर दे)

इस योजना के अतिरिक्त, संशोधन में प्रस्ताव है कि तामील एक भिन्न योजना के अन्तर्गत की जाएगी जिसके मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं :—

(क) न्यायालय सम्मन वादी को या उसके अभिकर्ता को परिदान करेगा जो दिन के अन्दर निम्नलिखित (ख) में उपबंधित रूप में तामील कराने की व्यवस्था करेगा; (दोष के परिणामों के लिए देखें, निम्नलिखित प्रश्न-20 । निम्नलिखित प्रश्न सं. 13 भी देखें)

(ख) वादी (या उसका अभिकर्ता) प्रतिवादी को सम्मन :—

(i) रजिस्टर्ड डाक,

(ii) स्पीड पोस्ट,

(iii) स्वीकृत कुरियर सेवा,

(iv) फैक्स संदेश,

(v) इलैक्ट्रानिक डाक सेवा, और

(vi) उच्च न्यायालय द्वारा नियम बनाकर निर्धारित किसी अन्य विधि द्वारा तामील कराएगा।

[उपर्युक्त (i) से (vi) के बीच अपनाई जाने वाली वास्तविक रीति न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट की जाएगी]

(ग) इसके अतिरिक्त, न्यायालय अपने किसी उपयुक्त अधिकारी के माध्यम से तामील किए जाने का भी निदेश दे सकेगा।

क्या आप उपर्युक्त योजना से सहमत हैं जिसमें न केवल आधुनिक प्रौद्योगिकी आविष्कारों का लाभ उठाने का प्रस्ताव है अपितु तामील की ऐसी रीति की भी व्यवस्था है जिसका दुरूपयोग नहीं किया जा सकता ?

क्या आप इससे सहमत हैं कि तामील की उपर्युक्त (ख) और (ग) दोनों रीति विधिक होनी चाहिएँ?

अभिवचन तथा विवरण

प्रश्न-10 : आदेश 6 नियम 5 (विवरणों का अतिरिक्त और बेहतर कथन) : विधेयक का खण्ड 16 (I) :

संहिता के आदेश 6, नियम 5 में यह व्यवस्था है कि (न्यायालय द्वारा) निम्नलिखित आदेशित किया जा सकेगा :

(क) विवरणों का अतिरिक्त ओर बेहतर कथन;

(ख) किसी अभिवचन में उल्लिखित किसी मामले के अतिरिक्त और बेहतर विवरण ;

(ग) आदेश न्यायोचित शर्तों पर होगा;

विधेयक में इस नियम का लोप करने का प्रस्ताव है। प्रस्ताव इस परिकल्पना पर आधारित है कि वर्तमान नियम अनावश्यक है और इससे विलम्ब हो सकता है। तथापि, इस प्रकार की परिकल्पना पर और विचार किए जाने की आवश्यकता है। ''अतिरिक्त और बेहतर विवरण'' से मामले में न्यायालय तथा विरोधी पक्ष का ज्ञान-वर्धन होगा। ''अतिरिक्त'' अभिव्यक्ति परिमाणिक पहलू की और ''बेहतर'' अभिव्यक्ति गुणात्मक पहलू की परिचायक है। सिद्धान्त रूप में विधि को विवाद के ऐसे स्पष्टीकरण को प्रोत्साहन देना चाहिए। विवरण मांगने के आदेश से यह आवश्यक नहीं कि विलम्ब ही हो। इसके बजाय विवाद का स्वरूप जितना अधिक स्पष्ट होगा विवाद्यकों के समाधान में भविष्य में उतना ही कम समय लगेगा। विवरण का उद्देश्य है कि पक्षकार मामले को बेहतर ढंग से समझ सकें। **स्पैडिंग बनाम पिट्जपैट्रिक** (1888) 38 सी. एच., डी. 413

इस विषय पर आपके विचारों का स्वागत है।

प्रश्न-11 : आदेश-6, नियम 15 (सत्यापन) : विधेयक का खंड 16 (II)

संहिता का आदेश-6, नियम 15 अभिवचनों के सत्यापन के बारे में है। विधेयक में इस आशय का उपनियम(4) जोड़ने का प्रस्ताव है कि सत्यापन करने वाला व्यक्ति अभिवचनों के समर्थन में शपथपत्र भी प्रस्तुत करेगा। यह धारा 26 में इस आशय के प्रस्तावित संशोधन से संबंधित है कि वादपत्र के तथ्य ''शपथपत्र द्वारा प्रमाणित'' होंगे (विधेयक का खण्ड 2) देखें उपर्युक्त प्रश्न-I

इस संबंध में आपकी क्या टिप्पणियां हैं ?

प्रश्न-12 : आदेश-6, नियम 17-18 (अभिवचनों का संशोधन) : विधेयक का खंड 16 (III) :

विधेयक में संहिता के आदेश 6 के नियम 17-18 का लोप करने का प्रस्ताव है। ये नियम अभिवचनों के संशोधन की अनुमति देने के लिए न्यायालय को शक्ति प्रदान करते हैं। यह प्रस्ताव इस परिकल्पना पर आधारित प्रतीत होता है कि (I) यह शक्ति अनावश्यक है और (II) इसका सहारा लेने से विलम्ब होता है।

तथापि, उपर्युक्त प्रस्ताव पर सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। अभिवचनों के संशोधन की आवश्यकता सदैव असावधानी बरतने के कारण नहीं पडती। यह विभिन्न कारणों से इसकी आवश्यकता पड़ सकती है। उदाहरण के लिए, परवर्ती घटनाओं तथा ऐसे तथ्यों के कारण से पहले जो वादी के ध्यान में नहीं थे इसकी आवश्यकता पडती है। वास्तव में, विधि द्वारा ऐसे मामलों में निर्णय का पुनर्विलोकन अनुकल्प है—

(देखें संहिता का आदेश 47, नियम 1) (देखें-निम्नलिखित दृष्टान्त स्वरूप मामले)

कभी-कभी, कोई दस्तावेज जो किसी मामले की सामग्री होता है अब संशोधन के लिए आवेदन करने वाले पक्षकार को मूलत: ज्ञात नहीं होता। इस दस्तावेज से अभिवचन का स्वरूप प्रभावित हो सकता है। ऐसे मामलों में, न्याय की मांग है कि वास्तविक मुद्दा न्यायालय के समक्ष आना चाहिए। न्यायालय से आशा की जाती है कि वह पक्षकारों के कष्टकारक वास्तविक विवाद के बारे में कार्यवाही करे न कि किसी वाद-विवाद पर जो विवाद को बहुत ही अपूर्ण ढंग से दर्शाता है।

ऐसे मामलों में वाद के निपटारे में विलम्ब अपरिहार्य हो सकता है। परन्तु पक्षकारों को तो कम से कम इतना संतोष तो होगा उनके बीच वास्तविक विवाद पर ''न्यायनिर्णय'' हुआ है जो वास्तव में न्यायिक कार्य का मूल है। अन्यथा, निर्णय से विवाद, जैसाकि पक्षकारों की दृष्टि में है, अनिर्णीत रहेगा।

संशोधन से संबंधित दृष्टान्त स्वरूप मामले

उपर्युक्त प्रश्नों को उदाहरण देकर समझाने के उद्देश्य से रिपोर्ट किए गए निर्णयों से कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :

(I) वादी ने विभाजन तथा हिसाब के लिए वाद दायर किया। प्रतिवादी ने यह आपत्ति की कि वाद भागीदारी के विघटन और हिसाब के लिए लाया जाना चाहिए। इस आशय से वादपत्र में संशोधन की अनुमति दी गई (अपील स्तर पर भी), क्योंकि यह अभिवचनों पर और स्वयं प्रतिवादी के साक्ष्य पर आधारित था।

के. कृष्णराव बनाम के. बाबजी राव

ए. आई. आर 1991, ए.पी. 232

(II) वादपत्र का संशोधन अधिक तत्परता से मंजूर किया जा सकता है, यदि आवश्यक सामग्री पहले ही से अभिलिखित हो।

ईश्वरदास बनाम मध्य प्रदेश राज्य

ए. आई. आर. 1979 सु.को. 551

(III) वादपत्र में कोर्ट फीस का मूल्यांकन नहीं दिया गया। वादी को ऐसे मूल्यांकन का उल्लेख करने के लिए संशोधन की अनुमती दी गई।

साठप्पा चेट्टियार बनाम रामानाथन चेट्टियार

ए.आई.आर. 1958 सु.को. 245

(I),वादी न्यायालय में उसकी धन संबंधी अधिभारिता से परे एक वाद लाया। उसने अपने दावे का एक भाग छोड़ने की इच्छा की। वाद को न्यायालय की अधिकारिता में लाने के उद्देश्य से इसकी अनुमति दे दी गई।

दुर्गा प्रसाद बनाम राधेश्याम

ए. आई. आर. 1990 राज. 57

तुलना करें—शोभावेंकटराव बनाम के. आर. महाले ए. आई आर. 1969 बम्बई 370

(यह उल्लेख किया जा सकता है कि संहिता के आदेश 2 के नियम 2(2) और आदेश 23 का नियम वादी को उसके दावे का कोई भाग छोड़ने की अनुमति देता है)

(V) संशोधन के लिए प्रार्थना पर विचार करते समय परवर्ती घटनाओं पर ध्यान दिया जा सकता है

विनीत कुमार बनाम मंगलसैन

ए. आई. आर. 1985 सु.को. 871 (1984) 3 सु.को. 352

ब्रजलाल बनाम होटल नीलम

ए. आई. आर. 1983 बम्बई 432

(VI) मध्यवर्ती घटनाओं के कारण वादपत्र में संशोधन की आवश्यकता पड़ सकती है, जहां परिवर्तित परस्थितियों में नया वाद हेतुक बन जाता है : (ठीक है, ऐसे संशोधन के पश्चात् प्रतिवादी को संशोधित वादपत्र का सामना करने के लिए अवसर दिया जाना चाहिए)

आर. दुर्गाराजू बनाम वेंकटराजू

ए. आई आर. 1997 आंध्र प्रदेश 14;

सतीश चन्द्र बनाम पश्चिम बंगाल राज्य

ए. आई. आर. 1960 कलकत्ता 278

(VII) विनिर्दिष्ट पालन के एक वाद में वादी विनिर्दिष्ट अनुतोष पालन अधिनियम, 1963 की धारा 16 (ग) द्वारा अपेक्षित संविदा के निष्पादन के लिए अपनी तत्परता तथा इच्छा का प्रकथन करने में असफल रहा। ऐसा प्रकथन करने की अनुमति दी गई (इससे कोई नया वाद हेतुक नहीं बना)

गजानन जयकिशन जोशी बनाम प्रभाकर मोहनलाल कालवार

(1990) 1 सु. को. 166

(VIII) हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के विवाह-विच्छेद के लिए याचिका में न्यायिक प्रथक्करण (एक विकल्प के रूप में) के लिए प्रार्थना संशोधन के रूप में जोड़े जाने के लिए स्वीकार कर ली गई ।

सत्यम बनाम गोपाला रेड्डी

ए. आई. आर. 1961 आन्ध्र प्रदेश 122

(IX) विवाह को निष्प्रभावी करने के लिए एक वाद दायर किया गया परन्तु विवाह की तारीख का उल्लेख किया जाना छूट गया इसे सद्भाविक भूल और तथ्यों को लेखबद्ध करने की अनिवार्यता मानते हुए विवाह की तारीख का उल्लेख करने के लिए संशोधन की अनुमति दी गई।

मन्दाकिनी बनाम चन्द्रसैन

ए. आई. आर. 1986 बम्बई 172

(X) वादपत्र में (भ्रम से) वादी द्वारा की गई स्वीकारोक्ति को वापस लेने के लिए वादपत्र में संशोधन की अनुमति दी जा सकती है

पंचदेव नारायण बनाम ज्योति सहाय

(1984) सु. को. 594

लिखित कथन में की गई स्वीकारोक्ति को वापस लेने के संबंध में तुलना करें—

महेन्द्र रेडियो एण्ड टेलिविजन बनाम स्टेट बैंक आफ इन्डिया

ए. आई. आर. 1988 इलाहाबाद 257

(XI) "कब्जे की राहत" जोड़ने के लिए वादपत्र में संशोधन की अनुमति दी जानी चाहिए यदि प्रतिवादी के साथ कोई गम्भीर पक्षपात नहीं होता है।

हरिदास बनाम गोदरेज रूस्तम

ए. आई. आर. 1983 सु. को. 319

उपर्युक्त विधिक स्थिति को देखते हुए प्रश्नाधीन प्रस्ताव पर आपके विचार आमंत्रित किए जाते हैं।

प्रश्न-13 : आदेश 7, नियम 9 : वादपत्र ग्रहण करने की प्रक्रिया : विधेयक का खण्ड 17 (1)

आदेश 7, नियम 9 के अधीन वादी वादपत्र आदि पर दस्तावेजों की सूची अंकित करेगा और (वादपत्र ग्रहण हो जाने पर) वह वादपत्र की आवश्यक प्रतियाँ उपलब्ध करायेगा (यदि अनुमति दी जाती है) वादपत्र का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करेगा। विधेयक में इस नियम का निम्नलिखित मुद्दों पर पुनरीक्षण करने का प्रस्ताव है :

(I) वादपत्र ग्रहण कर लिए जाने पर, न्यायालय आदेश 5 के अनुसार (प्रस्तावित संशोधन के अनुसार) तामील किए जाने के लिए वादी को समन देगा (देखें उपर्युक्त प्रश्न 9 के अन्तर्गत)

(II) वादी दो दिन के अन्दर प्रतिवादी को समन प्रेषित करेगा।

(III) जहां (आदेश 5 प्रस्तावित नियम 9-क) सम्मन न्यायालय को (अर्थात उसके उपयुक्त अधिकारी को) दिए जाएंगे वहां न्यायालय वादी को दो दिन के अन्दर अपेक्षित संख्या में प्रतियां (और तामील फीस) प्रस्तुत करने के लिए निदेश देगा।

प्रश्न-14 : आदेश 7, नियम 11 (वादपत्र का अस्वीकृत किया जाना) : विधेयक का खण्ड 17(11) :

संहिता के आदेश 7, नियम 11 में यह अपेक्षा की गई है कि न्यायालय चार स्थितियों में वादपत्र अस्वीकृत कर सकेगा। विधेयक में इसमें निम्नलिखित परिस्थितियां और जोड़ने का प्रस्ताव किया गया है :—

"(ङ) जहां वाद दो प्रतियों में फाईल नहीं किया जाता है,

(च) जहां वादी नियम 6 के उपनियम (2) के अनुपालना करने में असफल रहता है,

(निर्देश आदेश 5 के नियम 9 के संबंध में, जैसाकि प्रस्तावित है, प्रतीत होता है, देखें उपर्युक्त प्रश्न-13)

(छ) जहां वादी नियम 9-क के उपनियम (3) की अनुपालना करने में असफल रहता है।

(यह निर्देश आदेश 5, नियम 9-क न्यायालय नियंत्रित तामील के संबंध में प्रतीत होता है)

प्रश्नावली का उत्तर देने वालों की सहायता के लिए प्रस्तावित संशोधनों की थोड़े विस्तार से निम्नलिखित रूप में व्याख्या करना सुविधाजनक रहेगा :

प्रस्तावित खण्ड (ङ) विधेयक के खण्ड 14(1) में यह प्रस्ताव है कि वादपत्र दो प्रतियों में फाइल किया जायेगा। (देखें-उपर्युक्त प्रश्न-7) संभवतया, एक संबंधित संशोधन के रूप में, खण्ड 17(11), आदेश-7, नियम 11(च) अन्तः स्थापित करके यह प्रावधान किया गया है कि दो प्रतियों में फाइल करने में असफल रहने पर, वादपत्र अस्वीकार कर दिया जाएगा" (प्रस्ताव में सुधार के लिए वादी को कोई समय देने का विचार नहीं किया गया है) अपनी चूक सुधारने के लिए वादी को समय दिया जाना वांछनीय प्रतीत होता है।

प्रस्तावित खण्ड (च); आदेश 7, नियम 5 में जैसा कि संशोधन प्रस्तावित है (देखें प्रश्न-9 उपर्युक्त) यह अपेक्षित है कि वादी के माध्यम से सम्मन तामील कराने की पद्धति को कार्य रूप देने हेतु (जैसा कि अवधारणा की गई है) वादी प्रतिवादी को सम्मन भेजेगा (वादपत्र की एक प्रति के साथ)। यह दो दिन के अन्दर किया जाना चाहिए। आदेश 7, नियम 11(च) में यह प्रस्ताव है कि यदि ऐसा नहीं किया गया तो वादपत्र अस्वीकृत कर दिया जाएगा।

अब यह नोट किया जाना चाहिए कि उक्त स्थिति (प्रस्तावित) आदेश 7, नियम 9(1) के अन्तर्गत वादपत्र ग्रहण किए जाने के पश्चात ही यह स्थिति अवश्य आयेगी। ग्रहण किए जाने के पश्चात् वादपत्र को अस्वीकार करना उपयुक्त नहीं होगा। भाषा भी प्रश्न के अतिरिक्त भी ऐसी सारवान् विषय-वस्तु विद्यमान् है जिस पर विचार किया जाना चाहिए। क्या वादी को प्रतियां भेजने में अपनी असफलता को ठीक करने के लिए समय नहीं दिया जाना चाहिए।

साधारणतया वादी तामील कराने में जानबूझकर विलम्ब नहीं करेगा परन्तु विशिष्ट परिस्थितियों में कार्यभार तथा अन्य परिस्थितियां गतिरोध पैदा कर सकती हैं।

प्रस्तावित खण्ड (छ) — आदेश 7, नियम 11 में प्रस्तावित खण्ड (छ) अन्तः स्थापित करने का अर्थ है कि जैसा कि आदेश 5 में प्रस्तावित नियम 9-क(2) में अवधारित है, यदि वादी न्यायालय नियंत्रित तामील के लिए न्यायालय कार्यालय में प्रतियां और फीस आदि जमा नहीं कराता है तो वादपत्र अस्वीकार कर दिया जायेगा। यहां भी वादी को अपनी चूक सुधारने के लिए कोई समय देने की व्यवस्था नहीं है। इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या ऐसे मामलों में वादपत्र को सीधे अस्वीकार कर देना (आवश्यक रूप से) वांछित है। यह सच है कि खण्ड (1) के अन्तर्गत वादपत्र को अस्वीकार करने के विरूद्ध अपील की जा सकती है और खण्ड (11) के अन्तर्गत नए सिरे से वाद लाया जा सकता है (गुणागुण पर कोई निर्णय नहीं है)। परन्तु आगे चलकर अपील करने या नया वाद लाने का अर्थ यह होगा कि न्यायालय पर कार्यभार बढ़ेगा (वादी द्वारा किए गए व्यय और उठाई गई कठिनाईयों के अतिरिक्त)।

उपर्युक्त मुद्दों की दृष्टि से विधेयक के खण्ड 17(1) पर टिप्पणियां आमंत्रित हैं। (देखें प्रश्न-7 उपर्युक्त)

प्रश्न-15 : आदेश 7, नियम 14, 15, 18 (उन दस्तावेजों का प्रस्तुत किया जाना जिनके आधार पर वादी द्वारा वाद लाया गया है) : विधेयक के खण्ड 17 (iii) (iv) (v) :

संहिता के आदेश 7 के वर्तमान नियम 14, 15 और 18 वादपत्र के साथ दस्तावेजों को प्रस्तुत करने तथा उनकी सूची प्रस्तुत करने के बारे में है। इसी प्रयोजन से वर्तमान योजना में निम्नलिखित के बीच अन्तर किया गया है :

(क) वे दस्तावेज जो वाद की आधारशिला या आधार हैं (इन्हें मूल दस्तावेज भी कह सकते है) और

(ख) वे दस्तावेज जो दावे के साक्ष्य के रूप में हैं (साक्ष्यकारी दस्तावेज)

उपर्युक्त (क) वर्ग के अन्तर्गत आने वाले दस्तावेजों को व्यक्तिगत रूप से (यदि वादी के पास हैं आदि) प्रस्तुत किया जाएगा जबकि उपर्युक्त वर्ग (ख) के अन्तर्गत आने वाले दस्तावेजों की सूची दी जा सकती है।

इसके अतिरिक्त, दस्तावेजों का प्रस्तुत न किया जाना या सूचीबद्ध न किए जाने का आवश्यक रूप से अर्थ, साक्ष्य का (दस्तावेजों का) अपवर्जन नहीं है। प्रत्येक मामले में, न्यायालय वर्तमान आदेश 7, नियम 18 के अधीन उपयुक्त मामलों में इन्हें ग्रहण करने की अनुमति दे सकता है।

इस वर्तमान व्यवस्था को (विधेयक के अन्तर्गत) एक नई योजना से बदलने का प्रस्ताव है जिसके मुख्य तत्व इस प्रकार हैं :—

(क) सभी दस्तावेज वादपत्र के साथ व्यक्तिगत रूप में प्रस्तुत किए जाने चाहिएँ,

(ख) उपर्युक्त का अनुपालन न किए जाने को ठीक नहीं किया जा सकता क्योंकि अनुमति देने की न्यायालय की शक्ति आदेश 7, नियम 18 को संशोधित करके ले ली गई है।

अब उपर्युक्त संशोधनों के संदर्भ में कम से कम दो महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किए जाने की आवश्यकता है। पहला यह कि क्या साक्षधकारी दस्तावेजों को भी व्यक्तिगत रूप से प्रस्तुत करने और सुपुर्दगी (वाद आरम्भ होने पर) सुनिश्चित करना वास्तविक रूप में आवश्यक है? इससे बहुत से न्यायालयों पर दस्तावेजों का भार बढ़ जाएगा जो अन्ततः कभी औपचारिक रूप से साक्ष्य में नहीं दिए जाएंगे (क्योंकि प्रतिवादी द्वारा कतिपय तथ्यों को स्वीकार करने से ये दस्तावेज निरर्थक हो जाएंगे)। वर्तमान योजना ने, जो "मूल" और "साक्ष्यकारी दस्तावेजों" में अन्तर करती है, ठीक कार्य किया है। साक्ष्यकारी दस्तावेज तब प्रस्तुत किए जाएँ जब विवाद्यकों का समाधान किया जाए या किया जाने वाला हो। देखें आदेश 13, नियम 1-2 (जिसकी योजना की ए. आई. आर. 1990 गुवाहाटी 7 में विस्तार से जांच की गई है)। यदि प्रतिवादी ने उस समय तक कतिपय तथ्यों को स्वीकार कर लिया हो तो संबंधित दस्तावेजों की कोई भूमिका नहीं रह जायेगी।

दूसरे, बाद में दस्तावेज प्रस्तुत करने की अनुमति देने संबंधी न्यायालय की शक्ति का पूरी तरह से अपवर्जन करना (पर्याप्त कारण होते हुए भी) अनुचित प्रतीत होता है। प्रत्येक मामले में ऐसा नहीं है कि दस्तावेज प्रस्तुत न करने से प्रतिवादी के साथ पक्षपात होगा। यदि, उदाहरण के लिए, धोखाधड़ी आदि की कोई संभावना न हो और वाद की तिथि को दस्तावेज विद्यमान होने के बारे में कोई संदेह न हो तो न्यायालय द्वारा दस्तावेज स्वीकार कर लिया जाना चाहिए।

देवीदास बनाम पीरजादा बेगम

(1884) आई. एल. आर. 8 बम्बई, 377,

वी. अर्जुन बनाम शंकरैया

ए. आई. आर. 1957 आन्ध्र प्रदेश 784,

यह विशेषरूप से ऐसा मामला है जहां लोक दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियां वाद के स्तर पर प्रस्तुत करने का प्रस्ताव है।

तालेवर सिंह बनाम भगवानदास

(1908) 12 सी. डब्ल्यू. एन. 312

दस्तावेज प्रस्तुत करने के संबंध में नियमों की कठोरता में ढील देने के बारे में वर्तमान में न्यायालय को प्राप्त स्वविवेकाधिकार की उपयोगिता को उच्चतम स्तर पर स्वीकार किया गया है।

(I) **कांडा बनाम वाधु**

ए. आई. आर. 1950 पी.सी. 68

(II) **ईमामबंदी बनाम मुतसद्दी**

आई. एल. आर. 45 कलकत्ता 878 (पी.सी.)

एक लघु प्रश्न (प्रस्तावों से उत्पन्न नहीं) का इस स्तर पर उल्लेख किया जा सकता है। वर्तमान आदेश 7, नियम 15 का पाठ इस प्रकार है :—

> "15 जहां कि ऐसा कोई दस्तावेज वादी के कब्जे में या शक्ति में नही है, वहां यदि संभव हो तो वह यह कथित करेगा कि वह किसके कब्जे या शक्ति में है"

यह विचार किया जा सकता है कि आदेश 7, नियम 15 के अन्त में निम्नलिखित शब्द जोड़े जाएं "और दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए प्रक्रिया आरम्भ करने हेतु न्यायालय को आवेदन करके न्यायालय के समक्ष इन्हें प्रस्तुत करने के लिए कदम उठाएगा"। (निम्नलिखित प्रश्न 28 भी देखें)

प्रश्न-16 : आदेश 8, नियम1 (प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन) विधेयक का खण्ड 18(i) :

संहिता के आदेश 8, नियम 1 (जैसा कि यह इस समय है) की यह अपेक्षा है कि प्रतिवादी अपनी प्रतिरक्षा का लिखित कथन पहली सुनवाई के समय या पूर्व या "इतने समय के अन्दर जितना न्यायालय अनुज्ञात करे" उपस्थित करेगा। विधेयक में ऐसी व्यवस्था का प्रस्ताव है कि न्यायालय द्वारा अनुज्ञात समय प्रतिवादी पर समन तामील होने की तारीख से 30 दिन से परे नहीं होगा। प्रश्न यह है कि क्या 30 दिन की अपरिवर्तनीय समय सीमा का प्रावधान विधि द्वारा स्पष्ट रूप से किया जाना चाहिए? यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि जब प्रतिवादी द्वारा समन प्राप्त कर लिया जाता है जिसे अपनी प्रतिरक्षा तैयार करनी है, इस प्रकार की प्रतिरक्षा में सामान्यतया निम्नलिखित उपाय किए जाने अन्तर्निहित हैं :—

(i) आवश्यक दस्तावेज तैयार करना;

(ii) कोई वकील करना और उसे अनुदेश देना;

(iii) वकील को सामग्री का अध्ययन करने के लिए समय देना;

(iv) लिखित कथन का प्रारूपण करना (और इसे टाइप कराना); और

(v) व्यक्ति रूप से इसे न्यायालय में प्रस्तुत करना।

उपर्युक्त (iii) तथा (iv) में उल्लिखित उपाय प्रतिवादी के व्यक्तिगत नियंत्रण में नहीं हैं। इसके अतिरिक्त यदि मामला जटिल है तो वकील उपलब्ध विधिक प्रतिरक्षा का (यदि कोई है) अध्ययन करने में समय लेगा।

इन विचारणाओं को ध्यान में रखते हुए, लिखित कथन फाइल करने के लिए समय सीमा के संबंध में न्यायालय को उसके वर्तमान स्वविवेकाधिकार से संचित करना वांछनीय नहीं है। कभी-कभी, समय सीमा (प्रस्तावित) का पालन करने के उद्देश्य से प्रतिवादी का वकील लिखित कथन में ध्यान में आए सभी प्रतिरक्षा संबंधी तथ्यों को तर्कसंगत तथा अतर्कसंगत, लिखित कथन में सम्मिलित कर लेगा—इस प्रकार निपटाने में तथा अनावश्यक विवाद्यकों के निबंधन में विलम्ब होगा।

प्रश्न-18 : आदेश 8, नियम 1-क (प्रस्तावित) प्रतिवादी के दस्तावेज : विधेयक का खण्ड 18 (ii) :

इस समय आदेश 8 के नियम 1(2) में यह अपेक्षा है कि प्रतिवादी दस्तावेजों की एक सूची फाइल करेगा जिन पर वह उत्तर देने का विचार रखता है। इस प्रकार सूची में दिए गए किसी दस्तावेज को प्रतिवादी के साक्ष्य में वाद में, न्यायालय की अनुमति के बिना, जिसके लिए कारणों को लेखबद्ध करना होगा, स्वीकार नहीं किया जाएगा। वर्तमान आदेश 8 के नियम 1(2), 1(5) और 1(7) का यही सारांश है। यदि प्रतिवादी अपने प्रतिदावे के आधार के रूप में किसी दस्तावेज पर निर्भर करता है तब वह दस्तावेज लिखित कथन के साथ न्यायालय में व्यक्तिगत रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

जहां कोई प्रतिदावा नहीं होता परन्तु प्रतिवादी अपनी प्रतिरक्षा का आधार किसी ऐसे दस्तावेज को बनाता है जो उसके कब्जे अथवा शक्ति में है, तो वह भी लिखित कथन के साथ न्यायालय में व्यक्तिगत रूप से प्रस्तुत किया जाना चाहिए जैसा कि आदेश 8 नियम 8-क (1) में व्यवस्था की गई है। यदि यह इस प्रकार प्रस्तुत नहीं किया जाता, तो यह वर्तमान आदेश 8, नियम 8-क(2) के अधीन, न्यायालय की अनुमति के बिना, प्रतिवादी के साक्ष्य में प्राप्त नहीं किया जा सकता।

विधेयक में इस योजना में परिवर्तन करने का, सार तथा संरचना दोनों ही रूपों में, आदेश 8 नियम 1(2) को प्रतिस्थापित करके, प्रस्ताव किया गया है जिसके मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं :—

(क) प्रतिवादी को अपने लिखित कथन के साथ **प्रत्येक दस्तावेज को जिस पर वह निर्भर करता है,** सूची में प्रविष्ट करेगा, प्रस्तुत और सुपुर्द करेगा।

(i) क्या यह ऐसा दस्तावेज है जो उसकी प्रतिरक्षा का आधार है (प्रतिदोष आदि के बिना); अथवा

(ii) क्या यह ऐसा दस्तावेज है जिस पर उसका मुजरा या प्रतिदावा आधारित है; अथवा

(iii) क्या यह ऐसा दस्तावेज है जिस पर वह केवल "निर्भर" है? (अर्थात जो केवल साक्ष्यकारी दस्तावेज है। मूल अथवा आधारात्मक दस्तावेज नहीं)

(ख) ऐसा दस्तावेज है जो सूची में नहीं दिया गया है, प्रस्तुत अथवा सुपुर्द नहीं किया गया है, वाद की सुनवाई के समय प्रतिवादी की ओर से साक्ष्य में नहीं दिया जा सकता।

यह वर्जन विधिक है (विधेयक के अन्तर्गत) और न्यायालय द्वारा किसी भी प्रकार की ढील दिया जाना स्वीकार नहीं करता है चाहे उसे फाइल न करने के पीछे उचित कारण दर्शाया गया हो। (विरोधाभास प्रस्तावित आदेश 8 नियम 1-क(2) का वर्तमान आदेश 8 नियम 1(5) तथा आदेश 8, नियम 8-क(2) विचार करने के लिए यह एक गम्भीर मामला है कि क्या छूट न देने के ऐसे प्रावधान से निष्पक्ष विचारण की अनिवार्यता सुरक्षित रखी जा सकेगी। इससे आदेश 47, नियम1 निरर्थक हो जाएगा जिसके अन्तर्गत न्यायालय वाद में पाये गए किसी साक्ष्य के लिए पुनरीक्षा आवेदन स्वीकार कर सकता है। इस प्रस्ताव से अन्य प्रकार की असुविधाएं भी हो सकती हैं। (देखें निम्नलिखित प्रश्न 28 भी)

प्रश्न-18 : आदेश 8, नियम 9 (पश्चात्वर्ती अभिवचन) : विधेयक का खण्ड 18 (iii) :

संहिता के वर्तमान आदेश 8, नियम 9 में निम्नलिखित प्रावधान है :—

> "किसी प्रतिवादी के लिखित कथन के पश्चात् कोई अभिवचन, मुजरा या प्रतिदावा के खिलाफ प्रतिरक्षा करने की अनुरीति से अन्यथा प्रस्तुत नहीं किया जायेगा, सिवाय न्यायालय की अनुमति के द्वारा तथा उन शर्तों पर जैसा कि न्यायालय ठीक समझे। किन्तु

न्यायालय पक्षकारों में से लिखित या अतिरिक्त लिखित कथन किसी समय अपेक्षित कर सकेगा और उसे प्रस्तुत करने के लिए समय नियत कर सकेगा।''

विधेयक में इस नियम का लोप करने का प्रस्ताव है। आदेश 8 के नियम 9 का लोप करने के प्रस्ताव के परिणामों का विस्तार से विश्लेषण करने की आवश्यकता है।

(क) वर्तमान नियम **निषेध** से प्रारम्भ होता है। नकारात्मक शब्दावली से गठित इस नियम में यह व्यवस्था है कि **कोई भी अभिवचन** (पहले अभिवचन के पश्चात्) न्यायालय की अनुमति के बिना अनुगेय नहीं होगा। इस प्रकार शाब्दिक रूप में इसके लोप का अर्थ पश्चात्वर्ती अभिवचन के विरुद्ध निषेध का हटाया जाना।

(ख) तथापि, विधेयक में ऐसा आशय अन्तर्निहित प्रतीत नहीं होता है। इसका सामान्य दृष्टिकोण प्रक्रियात्मक परिष्करण को दूर करना है। इसका उद्देश्य पश्चातवर्ती अभिवचन की अनुमति देने की न्यायालय की शक्ति को छीन लेना है। यदि ऐसा है, तो यह प्रस्ताव अत्यन्त अवास्तविक दिखाई पड़ता है और इससे गम्भीर अन्याय भी हो सकता है। ऐसे अनुपूरक अभिवचन फाईल करना विभिन्न परिस्थितियों में आवश्यक हो सकता है। ऐसी स्थितियों की निम्नलिखित सूची केवल दृष्टांतस्वरूप है :

दृष्टांतस्वरूप मामले (अनुपूरक अभिवचन)

(I) यदि प्रतिवादी कोई नया मामला लाता है तो प्रतिवादी का पश्चातवर्ती अभिवचन फाईल करने की अनुमति देना उचित होगा।

शकूर बनाम जयपुर विकास प्राधिकरण

ए. आई. आर. 1987 राजस्थान

(II) यदि वादी (अनुमति से) अपने वादपत्र में संशोधन करता है तो प्रतिवादी को पश्चातवर्ती अभिवचन फाइल करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

सालीचरन बनाम सुक्रन्ती

ए. आई. आर. 1979 उड़ीसा 78

इसके विपरीत, यदि प्रतिवादी अपने लिखित कथन में संशोधन करता है, तब वादी को इस पर अपनी प्रतिक्रिया देने के लिए अपनी अतिरिक्त अभिवचन फाइल करने की स्वीकृति के लिए अनुमति दी जानी चाहिए।

(III) वाद दायर करने के पश्चात घटी घटनाओं पर ध्यान देने तथा वादो की विविधता से बचने के लिए अतिरिक्त अभिवचन फाइल करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

रामास्वामी नायडू बनाम पेटू पिल्लै

ए. आई. आर. 1965 मद्रास 9

(IV) जब कोई अल्प आयु वाद के विचाराधीन रहते हुए वयस्क हो जाता है और वह अपने अभिरक्षक द्वारा फाइल किए गए अभिवचन से सन्तुष्ट नहीं होता है तो उस अल्पआयु को इस नियम के अधीन अनुमति दी जानी चाहिए।

शिवकुमार सिंह बनाम कारी सिंह

ए. आई. आर. 1962 पटना 159

उपर्युक्त मुद्दों को ध्यान में रखते हुए विचाराधीन प्रश्नों पर आपके विचार आमंत्रित हैं।

प्रश्न-19: आदेश 8 नियम 10 (लिखित कथन फाइल करने में प्रतिवादी की असफलता) : विधेयक का खण्ड 18(III) :

वर्तमान आदेश 8, नियम 10 ऐसी स्थिति के बारे में हैं जहां प्रतिवादी अपना लिखित कथन फाईल करने में असफल रहता है। नियम में (1976 में संशोधित रूप में) न्यायालय के लिए दो विकल्प रह जाते हैं :—

(क) न्यायालय अपना निर्णय दे सकेगा; अथवा

(ख) ऐसा आदेश दे सकेगा जो उचित समझे।

गनपत चन्द बनाम जेठमल

ए. आई. आर 1983 राजस्थान 146

विधेयक में इस नियम का लोप करने का प्रस्ताव है। यह प्रकट होता है कि यह न्यायालय से ऐसी शक्ति ले लेगा जिसकी बहुत अधिक आवश्यकता है। इसका लोप करने से प्रक्रियात्मक व्यवस्था में अनिश्चितता की स्थिति पैदा हो जाएगी।

सम्मनों का तामील न होना

प्रश्न-20 : आदेश 9, नियम 2 (जहां फीस का संदाय करने में असफल रहने के कारण सम्मन तामील नहीं होते वहां वाद का खारिज किया जाना) : विधेयक का खण्ड 19 (1) आदेश 9 :

संहिता के आदेश 9 नियम 2 में, वर्तमान में न्यायालय को शक्ति प्राप्त है (परन्तु अपेक्षित नहीं है) कि वह वादी के फीस संदाय करने तथा वादपत्र की प्रतियां उपलब्ध कराने आदि में असफल रहने के कारण प्रतिवादी को सम्मन तामील न किए जाने के लिए वाद को खारिज कर सकेगा। विधेयक में इस प्रावधान को यह व्यवस्था करके और कठोर बनाया गया है कि न्यायालय वाद को खारिज कर सकेगा यदि प्रतिवादी को दो दिन के भीतर सम्मन भेजने में वादी के असफल रहने के कारण सम्मन तामील नहीं किए जा सके। (विधेयक में आदेश 5, नियम 9 में प्रस्तावित संशोधन में ऐसी व्यवस्था की गई है) देखें उपर्युक्त प्रश्न-9।

(इसके अतिरिक्त, विधेयक में वादपत्र की प्रतियां उपलब्ध कराने में असफल रहने के कारण तामील न किए जाने का कोई उल्लेख नहीं है संभवतया आदेश 4, नियम 1 में प्रस्तावित संशोधन के कारण)

इस प्रकार आदेश 9, नियम 2 का संशोधन पारिणामिक है और इस पर पृथक रूप में टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न-21 : आदेश 9, नियम 5 (नए समनों के लिए आवेदन करने में असफल रहना) : विधेयक का खण्ड 19 (11)

वर्तमान आदेश 9, नियम 5(1) के अन्तर्गत, वादी यदि एक माह के भीतर (पहले समन बिना तामील के वापस आ जाने के पश्चात्) नए समनों के लिए आवेदन करने में असफल रहता है तो न्यायालय वाद को खारिज कर सकेगा जब तक कि वादी असफलता की कतिपय विशिष्ट परिस्थितियों के बारे में न्यायालय को संतुष्ट नहीं कर देता है।

विधेयक में 30 दिन के स्थान पर 7 दिन प्रतिस्थापित करने का प्रस्ताव है।

क्या आप इस प्रस्ताव से सहमत हैं ?

वैकल्पिक विवाद समाधान की प्रक्रिया

प्रश्न-22 : आदेश 10, नियम 1-क (नया) वैकल्पिक विवाद समाधान विधेयक का खण्ड 20 (1):

संहिता का आदेश 10 न्यायालय द्वारा विचारण पूर्व स्तर पर पक्षकारों की इच्छा के बारे में है। विधेयक में इस आदेश में, इस आशय का नया संख्या 1-क जोड़ने का प्रस्ताव है कि न्यायालय, पक्षकारों की स्वीकृतियों और प्रत्याख्यानों को अभिलिखित करने के पश्चात् ''उन्हें धारा 89 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट न्यायालय के बाहर समझौते का कोई भी तरीके का विकल्प देने के लिए निर्देशित करेगा''।

यह नया नियम साररूप में धारा 89 के प्रस्तावित संशोधन का पारिणामिक है (विधेयक के खण्ड 7 के अनुसार)। तथापि, यह बताना आवश्यक है कि (विधेयक के खण्ड 7 द्वारा प्रस्तावित) धारा 89 इस प्रकार आरम्भ होती है :—

''89(1) जहाँ न्यायालय को यह प्रतीत होता हो कि किसी ऐसे समझौते के तत्व विद्यमान हैं जो दोनों पक्षो को स्वीकार्य हो सकता है वहाँ न्यायालय समझौते का निबंधन बनाएगा .....''

(देखें उपर्युक्त प्रश्न -3)

इस प्रकार प्रस्तावित धारा 89 के अन्तर्गत न्यायालय विशिष्ट मामले में समझौते की संभावना पर ध्यान देता है जबकि प्रस्तावित आदेश 10 नियम 1-क में ऐसी कोई अपेक्षा अन्तर्निहित नहीं है।

इस सामान्य सिद्धान्त के अनुसार कि नियम धाराओं से परे नहीं जाने चाहिएँ, यह प्रश्न विचार करने योग्य है कि क्या आदेश 10 नियम 1क (प्रस्तावित) में कोई संशोधन आवश्यक नहीं है।

(प्रारूपण का यह प्रश्न इस प्रमुख प्रश्न के अतिरिक्त है कि क्या वैकल्पिक विवाद समाधान, न्यायालय के माध्यम से, धारा 89 की ''सीमित'' बाध्यता के साथ विलम्ब कर सकते हैं)

उत्तर देने से इन्कार करना

प्रश्न-23 : आदेश 10, नियम 4, सारभूत प्रश्नों का उत्तर देने से इन्कार : विधेयक का खण्ड 20(11)

जहां किसी पक्षकार का अधिवक्ता, विचारण-पूर्व सुनवाई में उपस्थित होकर सारभूत प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाता है और न्यायालय का यह मत है कि पक्षकार स्वयं उन प्रश्नों का उत्तर दे सकता है वहां न्यायालय वाद की सुनवाई किसी आगामी दिन के लिए स्थगित कर सकेगा और "यह निर्देश दे सकेगा कि पक्षकार स्वयं इस प्रकार विनिर्दिष्ट दिन को उपस्थित होगा। विधेयक में यह प्रस्ताव है कि ऐसा आगामी दिन" पहली सुनवाई की तारीख से 7 दिन के बाद नहीं होगा।

उद्देश्य, स्पष्टतया, बीच की अवधि को कम करना है। इस प्रस्ताव का मूल्यांकन करते समय कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं को ध्यान में रखना चाहिए।

(I) न्यायालय के समक्ष कार्यभार इतना होना चाहिए कि अगले सप्ताह उसके पास खाली समय न रहे।

(II) प्रतिवादी (यह मानते हुए कि वह अपने अधिवक्ता के सम्पर्क में है) आवश्यक नहीं कि पांच-छः दिन में अपनी यात्रा का प्रबंध कर सके।

प्रश्नमालाएं तथा निरीक्षण

प्रश्न-24 : आदेश 11, नियम 2 : प्रश्नमालाएं :

संहिता का आदेश 11, नियम 2 में पक्षकार द्वारा न्यायालय को प्रश्नमालाओं का परिदान करने की व्यवस्था है परन्तु इसमें ऐसी कोई समय सीमा नहीं दी गई है जिसके भीतर न्यायालय को उसके ग्रहण करने के बारे में विनिश्चय करना होगा। विधेयक में इन शब्दों के जोड़े जाने का प्रस्ताव है "और यह कि न्यायालय उक्त आवेदन दिए जाने के 7 दिन के भीतर विनिश्चय करेगा"।

प्रश्नमालाओं पर 7 दिन के अन्दर विनिश्चय [यद्यपि कार्य नियम के रूप में अच्छा है (सदैव व्यवहार्य नहीं होगा) जहां न्यायालय कलैण्डर व्यस्त है] इसलिए, इसमें संशोधन की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, ऐसा प्रावधान किया जा सकता है कि न्यायालय आवेदन पर दो सप्ताह के भीतर साधारणतया निर्णय करेगा।

प्रश्न-25 : आदेश 11, नियम 15, दस्तावेजों के निरीक्षण के लिए सूचना : विधेयक का खण्ड 21 (11):

संहिता के आदेश 11, नियम 15 के अधीन "वाद का प्रत्येक पक्षकार दूसरे पक्षकार को किसी ऐसे दस्तावेज को अपने निरीक्षण के लिए पेश किए जाने के लिए सूचना दे सकता है जो कि दूसरे पक्षकार द्वारा फाइल किए गए उसके अभिवचन, शपथ-पत्र दस्तावेजों की सूची आदि में निर्दिष्ट हो। विधेयक में संशोधन का प्रस्ताव है जिसके अन्तर्गत सूचना विवाद्यकों के समझौते पर अथवा उसके पूर्व दी जानी चाहिए।

यह प्रस्ताव स्वीकार्य प्रतीत होता है। यह ठीक है कि यह एक सामान्य व्यवहार है यद्यपि पक्षकार भारत में सूचना प्रक्रिया को अक्सर नहीं अपनाते हैं।

प्रश्न-26 : आदेश 12, नियम 2 (दस्तावेजों को स्वीकार्य करने का नोटिस): विधेयक का खण्ड 22(1):

आदेश 12, नियम 2 किसी पक्षकार द्वारा विरोधी पक्षकार का इस आशय की सूचना दिए जाने के बारे में है कि वह सूचना के तामील किए जाने के 15 दिन के भीतर कतिपय दस्तावेजों को ग्रहण करेगा। प्रस्तावित संशोधन इस अवधि को कम करके 7 दिन करने का प्रस्ताव है।

प्रस्ताव प्रथम दृष्यूया स्वीकार्य है।

प्रश्न-27 : आदेश 12, नियम 4(तथ्य ग्रहण करने की सूचना)

संहिता के आदेश 12, नियम 4 के अधीन कोई पक्षकार तथ्यों को स्वीकार करने के लिए दूसरे पक्षकार को सूचना दे सकता है। जहां ऐसी सूचना के अनुसरण में दूसरे परन्तुक के अधीन स्वीकृति दिए जाने पर भी, न्यायालय, किसी भी समय, इस प्रकार दी गई स्वीकृति को संशोधित करने या वापस लेने, ऐसी शर्तों पर जो न्यायोचित हो, के लिए किसी पक्षकार को अनुमति दे सकेगा। अब दूसरे परन्तुक का लोप करने का प्रस्ताव है। उसका प्रभाव यह होगा कि कोई भी स्वीकृति न तो वापस ली जा सकेगी और न ही इसमें कोई संशोधन किया जा सकेगा और ऐसा तब भी होगा जब स्वीकृति गलती से, डरा धमकाकर, धोखाधड़ी से अथवा दबाव डालकर कराई गई हो। प्रथम दृष्टया, यह प्रस्ताव बहुत दूर चला गया प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त, वर्तमान नियम में भी स्वीकृति का वापस लेने का अधिकार नहीं है। मामला न्यायालय के स्वविवेकाधिकार के अधीन है। ऐसे अवसर भी आते हैं जब स्वीकृति अभिवचनों से भी गलती से की गई हो आदि-----। अतः वापस लेने की सुविधा सुरक्षित रखी जानी चाहिए।

हांलिस बनाम बर्टन (1892) 3 सी. एम. 226

दस्तावेज

प्रश्न-28 : आदेश 13, नियम 1 और 2 दस्तावेजों का प्रस्तुत किया जाना : विधेयक का खण्ड 23 :

संहिता के आदेश 13, नियम 1-2 में यह प्रावधान है कि जहां पक्षकार द्वारा कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया जा चुका है वहां पक्षकार को उसे (यदि वह दस्तावेज पक्षकार के कब्जे तथा शक्ति में है) विवाद्यकों के समझौते पर अथवा उससे पूर्व प्रस्तुत कर दिया जाना चाहिए अन्यथा, न्यायालय की अनुमति के बिना उसे साक्ष्य में प्रस्तुत नहीं किया जा सकेगा।

विधेयक में (देखें आदेश 7, नियम 14 और आदेश 8,नियम 1-क में प्रस्तावित संशोधन) अपनाई गई योजना भिन्न है। सभी दस्तावेज-मूल अथवा साक्ष्यकारी-मूल रूप में अथवा उनकी प्रतियां अभिवचनों के साथ प्रस्तुत की जानी चाहिएँ। जहां दस्तावेज की प्रति फाइल की जाती है वहां मूल दस्तावेज विवाद्यकों के समाधान के पश्चात् उपलब्ध कर दिए जाने चाहिएँ। (देखें उपर्युक्त प्रश्न-15 और प्रश्न-17)

आदेश 13, नियम 1-2 का संशोधन अधिकांशतः विधेयक में आदेश 7, नियम 14 और आदेश 8, नियम 1-क में अपनाए गए अपेक्षाकृत कठोर दृष्टिकोण पर, पारिणामिक है और इन दोनों प्रस्तावों का परिणाम एक साथ है। तथापि, विवरण के एक प्रश्न की जांच किए जाने की आवश्यकता है और वह इसे आदेश 7, नियम 14 आदि के अन्तर्गत फाइल कर सकता है। परन्तु वह आदेश 13, नियम 1 की अपेक्षा को पूरा करने में, (जहां दस्तावेज की पहली प्रति फाइल की गई है वहां विवाद्यकों का समाधान होने पर मूल दस्तावेज फाइल करने की अपेक्षा) असमर्थ हो सकता है ऐसी स्थिति में, नियम में यह प्रावधान होना चाहिए कि पक्षकार न्यायालय में उस व्यक्ति से, जिसके नियंत्रण में वह है, दस्तावेज मंगवाने के लिए आवेदन करे)

विवाद्यक

प्रश्न-29 : आदेश 14 नियम 4 : विवाद्यकों की रचना : विधेयक का खण्ड 24 (1) :

संहिता के आदेश 14 नियम 4 के अन्तर्गत जब कोई न्यायालय विवाद्यकों की तत्काल रचना नहीं कर पाता है (क्योंकि वह साक्षियों की परीक्षा अथवा दस्तावेजों का निरीक्षण करना चाहता हैं) तब वह मामले को किसी आगामी दिन के लिए स्थगित करेगा। विधेयक में यह प्रस्ताव है कि आगामी दिन 7 दिन के पश्चात् नहीं होना चाहिए।

इसके पीछे उद्देश्य इस प्रकार के अन्तराल को कम करना है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि वाद का यह दिन साक्षी अथवा दस्तावेज को प्रस्तुत करने के लिए होगा। ऐसी परिस्थितियां भी हो सकती हैं कि दस्तावेज तथा साक्षी इतना शीघ्र उपलब्ध न हो सके। तब यह कठोर समय सीमा अव्यवहार्य प्रमाणित होगी।

इस प्रस्ताव की जांच उपर्युक्त व्यवहार्य पहलू को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए।

प्रश्न-30 : आदेश 14 नियम 5 : विवाद्यकों का संशोधन आदि : विधेयक का खण्ड 24 (ii) :

संहिता के आदेश 14, नियम 5 में न्यायलय को, विवाद्यकों में, उनकी रचना के बाद भी, पुनःस्थापन करके अथवा उनमें संशोधन करने की न्यायालय को शक्ति प्राप्त है। विधेयक में इस नियम का लोप करने का प्रस्ताव है। यह मान लिया गया प्रतीत होता है कि क्योंकि अभिवचनों में संशोधन करने के लिए अनुमति देने की शक्ति (आदेश 6, नियम 17) को हटाया जाना है (प्रश्न 12 उपर्युक्त)(देखें विधेयक का खण्ड 16(iii)इसलिए, विवाद्यकों में पुरःस्थापन आदि का उपबंध रखने की कोई आवश्यकता नहीं है) ।

तथापि, यह बताया जाना आवश्यक है कि यह स्थिति का पूरा और सही चित्र नहीं है। विवाद्यक में पुरःस्थापन, अथवा संशोधन आवश्यक और वांछनीय होगा, केवल अभिवचनों के संशोधन के कारण से अपितु क्योंकि अभिवचन के मूल स्वरूप में फाइल किए जाने के कारण हो सकता है कुछ विवाद्यकों की रचना गलत रूप में की गई हो। न्यायालय को गलती को ठीक करने की शक्ति प्राप्त है।

इसके अतिरिक्त इन परिस्थितियों को छोड़ते हुए भी, (अर्थात् विवाद्यकों का संशोधन अभिवचनों के संशोधन के परिणामस्वरूप अथवा न्यायालय की गलती के कारण आवश्यक), ऐसी अन्य विशिष्ट परिस्थितियां भी हो सकती हैं जिनके कारण विवाद्यकों की पुनर्रचना न्यायोचित हो सकती है। दृष्टांत स्वरूप सूची नीचे दी जा रही है।

दृष्टांत स्वरूप सूची—विवाद्यकों का संशोधन

(i) साक्ष्य यह दर्शाता है कि अमुक दस्तावेज (गैर कानूनी नहीं) निरर्थक है। न्यायालय उसके आशय की जांच तथा विवाद्यकों को संशोधित करना चाहेगा।

(ii) साक्ष्य यह दर्शाता हो कि समझौता गैरकानूनी है (केवल निरर्थक ही नहीं) न्यायालय स्वयं इस प्रश्न पर विवाद्यक की रचना करना चाहेगा।

(iii) प्रतिवादी किसी तथ्य को स्वीकार कर सकता है। (अपने साक्ष्य में) अथवा आदेश 12 के अधीन (सूचना के उत्तर में) तब संबंधित विवाधक को निकालने अथवा उसका संशोधन करने की आवश्यकता पड़ेगी।

(iv) न्यायालय यह प्रकट करेगा कि वाद के स्वरूप को देखते हुए उसके द्वारा निबंधित विवाद्यक संभवतया उठेगा ही नहीं।

चिक्कावीर गौड़ा बनाम देवेगौड़ा

ए०आई० आर० 1975 कर्नाटक 145

वास्तव में, विलम्ब करने के बजाय विवाद्यकों में संशोधन आदि करने की शक्ति का उपयोग विविध प्रकार के वाद पैदा होने से बचने हेतु किया जा सकेगा।

चार्टर्ड बैंक आफ इन्डिया बनाम इम्पीरियल बैंक आफ इन्डिया

ए०आई० आर० 1930 कलकत्ता 534

यह संभवतया उस बहुमूल्य प्रयोजन के कारण है, जो विवाद्यकों से प्राप्त किया जा सकता है, कि प्रिवीकाउन्सिल ने एक मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि बहस के समाप्त हो जाने पर भी कोई विवाद्यक उठाया जा सकता है।

शामूपेंटर बनाम अब्दुल कादिर

आई०एल०आर० 33 मद्रास 607(पी०सी०)

प्रक्रिया

प्रश्न 31 : आदेश 16 नियम, 1(4) (पक्षकारों द्वारा समन प्राप्त किया जाना) विधेयक का खंण्ड 25 (i) :

संहिता के आदेश 16, नियम 1(4) के अधीन पक्षकार न्यायालय में आवेदन करके साक्षियों को सम्मन उपलब्ध करा सकते हैं। विधेयक में प्रस्ताव किया गया है कि ऐसा साक्षियों की सूची प्रस्तुत करने के 5 दिन के भीतर किया जाना चाहिए।

क्या आप इससे सहमत हैं ?

प्रश्न-32 : आदेश 16, नियम 2(1) : (खर्चे की राशि का जमा किया जाना) : विधेयक का खंड 16 (ii) :

आदेश 16, नियम 2(i) में यह अपेक्षा की गई है कि साक्षियों के लिए सम्मन का आवेदन करने वाला पक्षकार साक्षियों के खर्चे जमा कराएगा। विधेयक में यह प्रस्ताव है कि आदेश 16, नियम 1 (4) के अधीन किए गए आवेदन के 7 दिन के भीतर खर्चे की राशि जमा कराई जानी चाहिए।

क्या आप इस प्रस्ताव से सहमत हैं ?

स्थगन

प्रश्न-33 : आदेश 17, नियम 1 : (स्थगन तथा उसका खर्चा) :

विधेयक का खण्ड 35 :

वर्तमान में, न्यायालय को शक्ति प्राप्त है कि वह आदेश 17, नियम 1 के अधीन सुनवाई स्थगित कर दे और खर्चे के लिए "आदेश दे"। विधेयक में प्रस्ताव है कि—

(I) वाद की सुनवाई के दौरान किसी पक्षकार के लिए तीन से अधिक स्थगन स्वीकार नहीं किए जायेंगे ; और

(II) न्यायालय, जब स्थगन स्वीकार किया जाए, खर्चे का (ऐसे उच्चतर खर्चे सहित जो न्यायालय उचित समझे) आदेश दे सकेगा।

यह महसूस किया गया कि स्थगन स्वीकार करने के मामले में न्यायालय के स्वविवेकाधिकार पर रोक लगाना और खर्चे का आदेश देना (जैसा प्रस्तावित है) बहुत उपयुक्त नहीं होगा क्योंकि व्यवहार में इस प्रकार अपवाद स्वरूप मामले सामने आ सकते हैं जिनके लिए न्यायोचित दृष्टिकोण अपनाना उपयुक्त होगा। उदाहरण के लिए, यदि पक्षकार "क" की मृत्यु हो जाती है और "ख" उसका उत्तराधिकारी हो जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है तथा "ग" उत्तराधिकारी बन जाता है तब वादी के अनुरोध पर स्थगन आवश्यक हो जाएगा। उसके पश्चात्, वादी का वकील एक बार बीमार हो जाता है जिसके कारण स्थगन आवश्यक हो जाता है। बाद में किसी दुर्घटना में वादी घायल हो जाता है। इस प्रकार ये चार स्थगन हो जाएंगे। कठोरता वांछनीय नहीं है। देखें बशीर अहमद बनाम महमूद हुसैन, ए.आई.आर. 1995 सु. को. 1857)

साक्षी और साक्ष्य

प्रश्न-34 : आदेश 18, नियम 2(4) : पक्षकारों की परीक्षा का प्रश्न :

विधेयक का खण्ड 27(I) :

संहिता के आदेश 18 नियम 2 में उस क्रम का प्रावधान है जिसमें कि साक्षियों की परीक्षा की जाएगी । सामान्य नियम अलग है, आदेश 18 नियम 2(4) का पाठ इस प्रकार है :—

4 इस नियम में किसी बात के होते हुए भी न्यायालय ऐसे कारणों से, जो अभिलिखित किए जाएँगे, किसी पक्षकार को किसी भी प्रक्रम पर किसी साक्षी की परीक्षा के लिए निर्देश दे सकेगा या अनुज्ञात कर सकेगा। विधेयक में प्रस्ताव है कि इस उपनियम का लोप किया जाए।

इस प्रस्ताव का आशय समझने के लिए वर्तमान उपनियम के क्षेत्र तथा उपयोगिता को देखना वांछनीय होगा। इसमें न्यायालय के लिए दो विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ अंतर्विष्ट हैं—

(i) किसी भी स्तर पर साक्षियों की परीक्षा का निर्देश देने की शक्ति, और

(ii) किसी भी स्तर पर साक्षियों की परीक्षा की अनुमति देने की शक्ति।

इस संबंध में यह उल्लेख भी कर दिया जाना चाहिए कि उपनियम (4) जिसका अब लोप करने का प्रस्ताव है, वर्ष 1976 में अंत: स्थापित किया गया था और इसमें उच्च न्यायालयों के संशोधन समाविष्ट हैं (असम, नागालैंड, केरल, मध्य प्रदेश आदि उच्च न्यायालयों द्वारा किए गए) विधि द्वारा ऐसे स्पष्टीकरण की आवश्यकता पड़ने का एक कारण यह तथ्य था कि कुछ उच्च न्यायालयों का यह विचार था कि बहस के लिए मामला स्थगित हो जाने के पश्चात् न्यायालय साक्षी की परीक्षा के लिए बाध्य नहीं है (चाहे वह उपस्थित भी हो)

मोहन लाल बनाम इन्दरमन

ए.आई.आर. 1954 राजस्थान, 238

मुख्य न्यायाधीश के मत से मतभेद रखते हुए मोनीलाल बन्दोपाध्याय बनाम छिरोडा दासी मामले में (1894) आई.एल.आर. 20 कलकत्ता, 740।

यह उपनियम 1976 में विवाद को समाप्रित करने के लिए जोड़ा गया। यदि इसका लोप कर दिया गया तो पुराना विवाद फिर से आरम्भ हो जाएगा।

इसके अतिरिक्त, गुणावगुण की दृष्टि से भी उपनियम (4) का प्रावधान आवश्यक प्रतीत होता है। नीचे ये दृष्टांतस्वरूप परिस्थितियां दी जा रही हैं—

दृष्टांत स्वरूप मामले—परीक्षा का क्रम

(i) वादी द्वारा अपना मामला बंद कर दिए जाने के पश्चात् प्रतिवादी ने अपने साक्षियों के माध्यम से कतिपय दस्तावेज प्रस्तुत किए। वादी के पास उनका विरोध करने का कोई अवसर नहीं था। न्यायालय ने उसे इस प्रयोजन से अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दी।

अरण्यकुमार बनाम चिन्तामणि

ए.आई.आर. 1977, उड़ीसा 87

आलेख प्रधान बनाम धनार पाल

ए.आई.आर.1978 उड़ीसा 58

(ii) वादी अस्पताल में था जब उसके साक्षियों की परीक्षा की जा रही थी। न्यायालय ने वादी परीक्षा अंत में किए जाने की अनुमति दी।

शिव सहाय बनाम नंदलाल

ए.आई.आर. 1989 मध्य प्रदेश 40, 42

ब्रहमदेव प्रसाद साह बनाम राम सकल साह

ए. आई. आर. 1985, पटना 57

(3) पुनरीक्षण आवेदन पर सुनवाई और निर्णय

(4) (यदि पुनरीक्षण स्वीकार कर लिया जाए) मुख्य मामले की नए सिरे से सुनवाई, यद्यपि नए साक्ष्य तक ही सीमित

(5) इस प्रकार पुनः आरम्भ हुए विचारण में नया साक्ष्य और निर्णय (**कौरा राम बनाम गोबिन्द राम** ए.आई आर. 1980 पी. एण्ड एच. 160)

प्रश्न-37 : आदेश 18, नियम 19 (नए) (कमीशन पर कथन अभिलिखित कराने की शक्ति) विधेयक का खण्ड 27 (iv) :

विधेयक में एक नया नियम आदेश 18, नियम 19 अन्त:स्थापित करने का प्रस्ताव है जिसके अन्तर्गत न्यायालय साक्षियों की खुले न्यायालय में परीक्षा लेने के बजाय उन्हें प्रस्तावित आदेश 26, नियम 4क के अधीन कमीशन पर अपने कथन लेखबद्ध कराने का निदेश दे सकेगा। विधेयक के खण्ड 29 में इस आशय का आदेश 26 नियम 4क अन्त:स्थापित करने का प्रावधान है कि "न्यायालय न्याय के हित में अथवा मामलों को शीघ्र निपटाने के लिए या किसी अन्य कारण से अपनी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर निवास करने वाले किसी व्यक्ति की परीक्षा के लिए कमीशन निकाल सकेगा और इस प्रकार अभिलिखित किये गये साक्ष्य को साक्ष्य के रूप में पढ़ा जाएगा" (तुलना करें राजस्थान संशोधन आदेश 26, नियम 4क)

इस प्रकार आदेश 18, नियम 19 (प्रस्तावित) और आदेश 26, नियम 4क (प्रस्तावित) एक प्रकार के हैं।

आदेश 26, नियम 4क, प्रथम दृष्टि में अहानिकारक प्रतीत होता है । परन्तु वास्तविक समस्या प्रचलित भाषा से पैदा होती है। वह आधार क्या है जिस पर स्वविवेकाधिकार का उपयोग किया जाएगा? इसके अतिरिक्त निम्नलिखित के बीच असंतुलन का प्रश्न है—

(1) आदेश 18, नियम 4(1) (प्रस्तावित रूप में) जिसके अधीन (परन्तुक के अध्यधीन) प्रतिपरीक्षा आदि कमीशन पर की जाएगी (प्रश्न-35 उपर्युक्त)

(2) आदेश 18, नियम 9 और आदेश 26, नियम 4 (प्रस्तावित) इसके अन्तर्गत यह स्वविवेकाधिकार है (देखें प्रश्न-39)

निर्णय और डिक्री

प्रश्न-38 : आदेश 20, नियम 1 (निर्णय सुनाया जाना और उसकी प्रतियाँ आदि देना) : खण्ड 32 (1) के साथ पठित विधेयक का खण्ड 28 :

विधेयक के खण्ड 28 और 32(1) में कतिपय सारभूत परिवर्तनों के प्रस्ताव हैं—

(1) निर्णय की प्रतियाँ पक्षकारों को देने के संबंध में निर्णय सुनाते समय अपनाई जाने वाली प्रक्रिया तथा डिक्रियों को तैयार करना आदि (विधेयक का खण्ड 28) और

(2) डिक्री आदि की प्रति, जो प्रथम अपील दायर करने के साथ प्रस्तुत की जानी चाहिए, से संबंधित विधि की अपेक्षाओं में (विधेयक का खण्ड 32 (1)

प्रस्ताव पर्याप्त रूप से विस्तृत है और संहिता के आदेश 20, नियम 1(2), आदेश 20, नियम 6क और नियम 6ख तथा आदेश 41, नियम 1 से संबंधित है। वर्तमान विधि तथा प्रस्तावित संशोधनों का निम्नलिखित रूप में विश्लेषण करना सुविधाजनक होगा :—

(क) वर्तमान आदेश 20, नियम 1 (2) के अन्तर्गत, सम्पूर्ण निर्णय की एक प्रति "पक्षकारों आदि के परिशीलन के लिए" निर्णय सुनाए जाने के तुरन्त बाद "अपील दायर करने हेतु" उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियमों में निर्दिष्ट अधिभारों के संदाय पर, उपलब्ध कराई जायेगी।

(ख) वर्तमान आदेश 20, नियम 6क (1) और (1), और नियम 6क (2) के अधीन योजना निम्नलिखित है :—

(1) निर्णय के अन्तिम पैराग्राफ में अनुदत्त अनुतोष का निश्चित रूप से उल्लेख किया जाएगा।

(2) न्यायालय डिक्री यथाशीघ्र तैयार कराने का, 15 दिन के भीतर, पूरा प्रयास करेगा, परन्तु यदि 15 दिन के भीतर डिक्री तैयार नहीं हो पाती है तो वहाँ न्यायालय यदि डिक्री के विरूद्ध अपील करने के इच्छुक पक्षकार न्यायालय से प्रमाण-पत्र प्राप्त करके डिक्री की प्रति फाइल किए बिना अपील दायर कर सकेगा। निर्णय का अन्तिम पैराग्राफ अपील और उसके निष्पादन के प्रयोजन से डिक्री माना जाएगा।

इसके विपरीत, प्रस्तावित योजना के अन्तर्गत योजना इस प्रकार होगी :—

(1) डिक्री 15 दिन के भीतर तैयार कर ली जानी चाहिए। (आदेश 20, नियम 6क(1) प्रस्तावित)

(2) इस उपबन्ध का, कि निर्णय का अन्तिम पैराग्राफ में निश्चित अनुतोष अन्तर्विष्ट होगा, लोप कर दिया गया है [आदेश 20, नियम 6क (1) प्रस्तावित]

(3) अपील दायर करने के लिए निर्णय की प्रतियाँ उपलब्ध कराई जानी चाहिए। (आदेश 20, नियम 6ख प्रस्तावित)

(4) अपील डिक्री की प्रति फाइल किए बिना ही दायर की जा सकेगी। निर्णय की प्रति [उपयुक्त (3) के अन्तर्गत उपलब्ध कराई गई] को डिक्री समझा जायेगा। परन्तु एक बार डिक्री तैयार हो जाने पर, निर्णय डिक्री के रूप में प्रभावी नहीं होगा। (आदेश 20, नियम 6क और आदेश 41, नियम 1 प्रस्तावित रूप में)

[विधेयक का खण्ड 32 (1) द्वारा प्रस्तावित आदेश 41, नियम 1]

यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि विधेयक में डिक्री को समय से तैयार करने पर बहुत बल दिया गया है और (परिणामस्वरूप निर्णय के अन्तिम पैराग्राफ की प्रति पर अपील फाइल करने की सुविधा को हटा दिया गया है (डिक्री तैयार होने तक) तथापि, निर्णय को डिक्री तैयार होने तक डिक्री समझा जायेगा।

विचार करने योग्य मुख्य प्रश्न यह है कि क्या यह संशोधित योजना वर्तमान विधि का सुधार स्वरूप है जो विधि आयोग द्वारा अपनी 54वीं रिपोर्ट में की गई विषय की विस्तृत जाँच तथा संबंधित सिफारिशों पर आधारित है। वर्तमान विधि से कोई गम्भीर शिकायत नहीं हुई है। इसमें वास्तविकता पर ध्यान दिया गया है अर्थात डिक्री तैयार होने में विलम्ब पर और संबंधित प्रावधान किए गए हैं।

प्रसंगवश, आदेश 20, नियम 6क (1) में वर्तमान उपबन्ध (निश्चित अनुतोष का निर्णय में उल्लेख) न केवल अपील दायर करने में सहायक है, अपितु निर्णय लिखने की गुणवत्ता में भी सुधार करने का कार्य करता है। यह न्यायाधीश को अनुतोष पर अपना ध्यान केन्द्रित करने के लिए बाध्य करता है और इस प्रकार स्पष्टता और निश्चितता के हेतुक को प्रोत्साहन देता है। प्रस्तावित संशोधन में इस पहलू का, जो बहुत महत्वपूर्ण है, अभाव प्रतीत होता है।

(देखें प्रश्न 42)

प्रश्न-39 : आदेश26, नियम 4क (नया) साक्षियों के लिए कमीशन: विधेयक का खण्ड 29 (देखें उपर्युक्त प्रश्न 35)

विधेयक के खण्ड 29 में आदेश 26, नियम 4क नया अन्त:स्थापित करने का प्रस्ताव है, जिसके अन्तर्गत, न्यायालय न्याय के हित में, अपनी अधिकारिता के अन्तर्गत, साक्षियों की परीक्षा के लिए कमीशन निकाल सकेगा। यह नोट किया जा सकता है कि विधेयक के खण्ड 27 (ii) में आदेश 18 नियम 4 का, ऐसे कमीशन को अनिवार्य बनाने के लिए, संशोधन करने का प्रस्ताव है (कतिपय मामलों को छोड़कर) (देखें उपर्युक्त प्रश्न 35)

वादकालीन अनुतोष

प्रश्न-40 : आदेश 39, नियम 1 (अस्थायी) व्यादेश : विधेयक का खण्ड 30 :

वर्तमान आदेश 39, नियम 1 में न्यायालय को अस्थायी व्यादेश जारी करने की शक्ति प्राप्त है—अधिकांशत: विवादित सम्पत्ति के मामले में अथवा ऐसी आशंका होने पर कि प्रतिवादी अपने लेनदारों को धोखा देने के विचार से अपनी सम्पत्ति का विक्रय कर देगा। विधेयक में उपनियम (2) जोड़ने का प्रस्ताव है जिसके अन्तर्गत "न्यायालय (ऐसा व्यादेश अनुदत्त करते समय) वादी को ऐसी प्रतिभूति या अन्यथा देने के लिए निदेश देगा जो ठीक समझे"।

यह निश्चित नहीं है कि क्या इस प्रकार का विधिक प्रावधान वास्तव में आवश्यक है और सारवान् प्रश्न पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है? इसके अतिरिक्त एक बार प्रारूपण पर भी दृष्टि डाला जाना आवश्यक है।

प्रश्न-41 : आदेश 39क (प्रस्तावित) (वाद संस्थित किए जाने से पूर्व निरीक्षण) : विधेयक का खण्ड 31 :

विधेयक में संहिता में आदेश 39क अन्त:स्थापित करने का प्रस्ताव है। इसका उद्देश्य (यद्यपि प्रारूप नियमों में निश्चित रूप से उल्लिखित नहीं है) यह है कि किसी वाद के संस्थित किए जाने से पूर्व भी, वादी का कोई प्रतिनिधि "विवादित विषय के विवादीकरण के प्रयोजन से" स्थानीय निरीक्षण करने हेतु कमिश्नर की नियुक्ति के लिए न्यायालय में आवेदन कर सकेगा। इस प्रकार नियुक्त कमिश्नर आदेश 26 के अन्तर्गत नियुक्त समझा जाएगा। आदेश 39क नियम 2 में आगे यह प्रस्ताव है कि ऐसा आवेदन फाइल करने की तारीख से सात दिन के भीतर वाद फाइल करने के लिए सक्षम व्यक्ति वाद फाइल करेगा।

विधेयक का प्रारूप होने वाले परिणामों के विषय में मौन है—

(1) यदि वाद इस प्रकार फाइल किया जाता है, अथवा

(2) यदि वाद इस प्रकार फाइल नहीं किया जाता है।

आशय संभवतया यह है कि यदि वाद फाइल किया जाता है तो नियुक्ति बनी रहेगी। यदि नहीं, तो यह समाप्त हो जाएगी।

सम्भवतया प्रारूपित रूप में आदेश, से इस प्रावधान के पीछे वास्तविक उद्देश्य पूरा नहीं होता है जो कि उद्देश्यों और कारणों के कथन के पैरा 3 के खण्ड (ज) से प्रकट होता है और जिसका पाठ इस प्रकार है :—

"(ज) सम्पत्ति के विवादों विशेषकर किसी अन्य की भूमि पर अप्राधिकृत निर्माण से संबंधित मामलों में यह पाया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के विद्यमान् उपबंधों के अधीन व्यादेश के लिए कोई आवेदन केवल तभी किया जा सकता है जब सक्षम अधिकारिता रखने वाले न्यायालय में पहले वाद फाइल कर दिया गया हो। इस कठिनाई को दूर करने की दृष्टि से यह प्रस्ताव किया जाता है कि वह व्यक्ति सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय में संपत्ति की वास्तविक स्थिति को सुनिश्चित करने के लिए आयुक्त की नियुक्ति के लिए आवेदन करे जिससे नियमित वाद फाइल करने के समय विवादग्रस्त सम्पत्ति की वास्तविक स्थिति के संबंध में रिपोर्ट कमिश्नर को उपलब्ध हो,"

इस आदेश के नियम का प्रारूप उपर्युक्त उद्देश्य के अनुरूप अथवा इस संबंध में प्रारूपण करने वाले व्यक्ति के मस्तिष्क के अभिप्राय तथा योजना का स्पष्ट उल्लेख करने की दृष्टि से फिर से तैयार किया जाना चाहिए।

यह प्रस्ताव सार की दृष्टि से असाधारण नहीं है। वास्तव में इसका विस्तार किया जा सकेगा और कतिपय अन्य कमीशन, अर्थात् साक्षियों के जिनके देश से बाहर जाने की संभावना है या जो बहुत बीमार है, कथन लेखबद्ध करने हेतु, इसके अधीन आ सकेंगे। ठीक है, कि प्रतिपरीक्षा न होने पर उनके कथनों को "साक्ष्य" नहीं माना जा सकता। परन्तु इस प्रकार अभिलिखित कथन (यदि सांविधिक रूप से अभिलिखित है) अन्य प्रयोजन भी सिद्ध कर सकते हैं। (उदाहरण के लिए देखें धारा 32, 145, 157 और 159 साक्ष्य अधिनियम)

तथापि, प्रारूपण में विविध प्रकार के परिवर्तनों की आवश्यकता है और (जैसा ऊपर सुझाव दिया गया है) वाद-पूर्व आवेदन किए जाने के पश्चात् वाद फाइल करने न करने के परिणामों के बारे में एक उपबन्ध जोड़ना भी आवश्यक होगा।

वाद का वर्ग, जिसके विषय में उपबंध बनाया गया है, निश्चय के साथ दर्शाया जाना चाहिए।

उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, आप अपनी टिप्पणियाँ देना चाहेंगे।

अपील प्रक्रिया

प्रश्न-42 : आदेश 41, नियम 1 (1) (अपील का स्वरूप) : विधेयक का खण्ड 32 (1) :

विधेयक में आदेश 20, नियम 6क, 6ख आदि में प्रस्तावित संशोधन की दृष्टि से विधेयक (पारिणामिक परिवर्तन के रूप में) आदेश 41, नियम 1 (1) में संशोधन करने का प्रस्ताव करता है। (देखें उपर्युक्त प्रश्न 28)

प्रश्न-43 : आदेश 41, नियम 9 (अपील के ज्ञापन का प्रस्तुत किया जाना तथा पंजीकरण) : विधेयक का खण्ड 32 (ii) :

विद्यमान आदेश 41, नियम 1, 9 आदि के अन्तर्गत अपील का ज्ञापन अपील न्यायालय में प्रस्तुत करना होता है। तत्पश्चात् (तकनीकी जाँच के पश्चात्) अपील का ज्ञापन न्यायालय (या उसके अधिकारी) द्वारा ग्रहण किया जाता है जो उस पर प्रस्तुत करने की तारीख अंकित करेगा और अपील रजिस्टर में उसकी प्रविष्टि करेगा।

उपर्युक्त प्रक्रिया के स्थान पर, विधेयक में एक भिन्न योजना की परिकल्पना की गई है। अपील का ज्ञापन निर्णय सुनाने वाले न्यायालय में फाइल किया जाएगा। आदेश 41, नियम 9 में प्रस्तावित संशोधन का यही सारांश है। यद्यपि आदेश 41, नियम 1 में इस प्रयोजन से अधिक संशोधन नहीं किया गया है। यह प्रस्तावित है कि विचारण न्यायालय ज्ञापन की अपील न्यायालय को प्रेषित करेगा (यद्यपि सुझाए गए संशोधनों में स्पष्ट रूप से विशिष्ट प्रावधान नहीं किया गया है)।

आप इस योजना से कहाँ तक सहमत हैं ?

[विधेयक में आदेश 41, नियम 11, 12, 13, 15, 18, 19 और 22 में खण्ड 32 (VII) में प्रस्तावित संशोधन, उपर्युक्त प्रश्न 41, 42 में निर्दिष्ट संशोधनों के परिणामस्वरूप हैं)

MGIPRRND—61 LJ&CA/2000—100 Copies.

PLD.92.CLXIII (Hindi)
100—2000 (DSK–IV)

Price : { Inland : Rs. 1780.00
Foreign : £ 25.60 or $ 36.60

Printed by the Manager, Govt. of India Press, Ring Road, Mayapuri, New Delhi-110064
and Published by the Controller of Publications, Delhi-110054 — 2001